सन्त-जीवनी

कबीरदास, बाबा नानक, गोस्वामी तुलसीदास,
तुकाराम

छोटी बहू, गृहिणी, मानवती आदि के
लेखक

गिरिजाकुमार घोष

कृत

प्रकाशक
साहित्य-परिषद् कार्यालय,
गुरुकुल कांगड़ी

१९१८ ई०

पण्डित अनन्तराम के प्रबन्ध से
अनन्तराम और साठे के
सद्धर्म प्रचारक यन्त्रालय—देहली में छपा ।

कृतज्ञता-स्वीकार ।

इस छोटी सी पुस्तक लिखने का मसाला मुझको श्रीयुत वीरेश्वर चक्रवर्ती-प्रणीत "भारत वर्षीय भक्त कवि" नामक बँगला पुस्तक से प्राप्त हुआ है। इसलिए मैं उक्त चक्रवर्ती महाशय का कृतज्ञ हूं।

प्रयाग,
श्रावण कृष्णा एकादशी ।
सम्वत् १९११ —गि०

संत-जीवनी

कबीरदास

भारतवर्ष के धर्मवीर सन्त महात्माओं के सच्चे जीवन-चरित संग्रह करना एक प्रकार से बिलकुल असम्भव जान पड़ता है। जिन सब महात्माओं की प्रतिभा ने किसी समय देश भर में हलचल मचा दिया था, उनके समय तक का निश्चय करना बहुत कठिन है। तिस पर सन्त महात्माओं के विषय में ऐसी ऐसी असम्भव घटनाएं सुनी जाती हैं कि उनसे ऐतिहासिक सत्य छान लेना और भी कठिन जान पड़ता है। भारतवर्ष में जीवनी लिखने की रीति ही कभी नहीं प्रचलित थी। विदेशी धर्मवीर कर्मवीरों के अनेक चरित हम लोग पढ़ा और सुना करते हैं, परन्तु अपनी मातृभूमि की गोद में जो महात्मागण अद्भुत लीलाएं कर गये हैं, उनका ठीक ठीक पता नहीं चलता। नहीं तो आज भारतवर्ष के भी अनेक नररत्नों के चरित्रों से हम लोग अपने लिए उत्तमोत्तम आदर्श पा सकते थे। अस्तु,

तक सम्भव है, उन्हीं से हम लोगों को सन्तोष करना पड़ता है।

कबीरदास की जीवनी के लिए कबीरपन्थी साधुओं में प्रचलित दन्तकथाओं और भक्तमाल बीजक आदि ग्रन्थों से तथा कुछ आधुनिक लेखों से जो उपादान इकट्ठे किये जा सकते है उन्हीं से काम लेना पड़ता है। कबीरपन्थी उपादानों में अलौकिक आख्यायिकाओं की भरमार पायी जाती है। उनमें से कुछ उपदेशपूर्ण और सार गर्भित कहानियां लेली गयी हैं, इनको बिलकुल छोड़ देने से सन्त--चरितों की शोभा घट जाने का भय रहता है, उपाख्यानों का ऐतिहासिक मूल्य कम होने पर भी उन से उच्च श्रेणी की शिक्षा अवश्य हाथ लग जाती है।

पन्द्रहवीं शताब्दी के शेष भाग में बनारस के पास किसी छोटे से गांव में कबीरदास का जन्म हुआ था। यह भारत के भक्त कवियों के शिरो-भूषण थे, ऐसा कहना कोई अत्युक्ति न होगी। इनका धर्ममत बहुत ही उदार और अद्वैतवाद की पक्की भीति पर प्रतिष्ठित है। यह महापुरुष एक साथ ऊंची श्रेणी के भक्त धर्म-प्रवर्त्तक और कवि भी थे।

बौद्धधर्म का प्रभाव जब भारतवर्ष से हटने लगा और जब हिन्दू धर्म का फिर अभ्युदय होने लगा, उस समय ब्राह्मणों

का अधिकार बहुत बढ़ चला और मूर्तिपूजा की सहायता से भगवद् आराधन की रीति बड़े बेग से प्रवाहित होने लगी। उसधर्म का प्रभाव चारों ओर फैल जाने से भ्रम, कुसंस्कार और संकीर्णता के बादलों से भारतीय आकाश घिर गया। भांति २ की अलीक कहानियों, अलौकिक वर्णनों और असार उपन्यासों के उलझन में वैदिक धर्म का स्वरूप बहुत ही बिगड़ गया। यह विकृतदशा बहुत दिन तक रह गयी। आज तक इसकी महती शक्ति देश के सब ठौर पायी जाती है और वर्तमान समय के राज-नैतिक धर्म-नैतिक और सामाजिक उन्नति के पथ में बहुत कुछ बाधा डाल रही है।

प्रकृति का एक साधारण नियम यह देखा जाता है कि संसार में जब किसी बुराई या अभाव की प्रबलता होती है तो उसके हटाने का प्रबन्ध भी आप से आप हो जाता है। ईश्वर के नियम समता के पक्षपाती हैं। जिस देश की लोकसंख्या कम होती है, वहां देशान्तर से लोग आ आकर बस जाते हैं, जहां थोड़े स्थान में बहुत से लोगों की भीड़ होती है वहां से कुछ लोगों के देशान्तर चले जाने की आवश्यकता देख पड़ती है, या दुर्भिक्ष, प्लेग, मैलेरिया आदि संक्रामक रोग या कोई दैवी उत्पात आकर लोक-संख्या घटा कर फिर समानता ले

आती है। पृथ्वी जब पाप के बोझ से डगमगाने लगती है तब सर्वशक्तिमान ईश्वर मनुष्यों में उतर कर उनका उद्धार करते हैं, ऐसा मत बहुतेरी सभ्य जातिओं में प्रचलित पाया जाता है। फिर जब मनुष्य-समाज कुसंस्कार और भ्रम से घिर जाता है, उस समय अज्ञान का अन्धकार हटा देने के लिये धर्म-संस्कारक महापुरुषों का आविर्भाव हुआ करता है। बौद्धधर्म के हट जाने उपरान्त भारतवर्ष में जिन उपधर्मों की बढ़ती होने लगी थी, उनका अन्धकार हटाकर सत्य की ज्योति फैलाने के लिये ऐसे बहुतेरे महापुरुष जन्म ले चुके हैं, अब भी ले रहे हैं और जब तक भ्रम, प्रमाद और कुसंस्कार बिलकुल हटकर पवित्र धर्म का उजियाला फिर न चमकेगा तब तक वे जन्म लेते ही रहेंगे। साधारण अभाव और पूर्ति के नियमानुसार यह बात अवश्य ही होगी। इन्हीं सब धर्म प्रतिष्ठाताओं में से कबीरदास एक प्रधान पुरुष थे। जातिभेद हटाकर उदारभाव से एक अद्वितीय सत्यस्वरूप परब्रह्म की उपासना चलाना ही इस महात्मा के जीवन का उद्देश्य था।

कबीरपन्थियों के मुख से एक दोहा सुन पड़ता है जिससे मालूम होता है कि कबीरदास संवत् १२०५, या ई० सन् ११४८ में, काशी में रहते थे। फिर यह भी लिखा हुआ

है कि १४४८ ई० में वह जौनपुर जिले के मगहर नाम के एक गांव में गये और अग्रहायण शुक्ला एकादशी को उनका शरीर छुट गया। इन दोनों बातों को सत्य मान लेनेसे कबीर ३०० वर्ष तक जीवित रहे होंगे, और उनके मतवाले उनके ३०० वर्ष तक जीते रहने की बात ही सत्य मानते हैं। इतिहास की दृष्टि से विचार करना हो तो इन दोनों समयों में से एक भी कबीर के जीते रहने का समय नहीं माना जा सकता। नाभाजी के भक्तमाल और प्रसिद्ध मुसलमानी ग्रन्थ आईनअकबरी से जान पड़ता है कि सिकन्दर लोदी के समय में कबीर जीवित थे, हिन्दू मुसलमान दोनों के विख्यात ग्रन्थों से इस प्रकार एक ही समय का उल्लेख देख कर उसे सत्य मान लेना ही पड़ता है। सिक़न्दर लोदी १४८८ ई० में तख्त पर बैठा और १५१७ ई० में मर गया। सो १५ शताब्दी के शेष और १६ शताब्दी के प्रारम्भ में कबीर जीवित थे, इस बात पर अधिक संशय नहीं हो सकता।

कबीरपन्थी यह भी कहा करते हैं कि कबीर ने चारों युगों में जन्म लिया था। सत्ययुग में वह सुकृत, त्रेता में मुनीन्द्र, द्वापर में करुणामय और कलियुग में कबीर नाम से विख्यात हुए। वह ज्ञानी नाम से भी पुकारे जाते हैं, इस बात

से यह समझा जा सकता है कि भिन्न २ समयों में एक ही श्रेणी का धर्मोपदेश देने के लिए भिन्न २ मनुष्य को एक ही महापुरुष का अवतार मान लिया है।

कबीरदास के जन्म के बारे में बहुत तरह की बातें सुनी जाती हैं, परन्तु वे सब ऐसी अलौकिक बातों से भरी पायी जाती हैं कि उनमें से कोई भी इतिहास नहीं मानी जा सकती, परन्तु एक बात पर कबीरजी की जीवनी लिखने वाले सहमत देख पड़ते हैं कि नूरा नाम के एक जुलाहे ने पिता की नाईं उनका पालन किया था।

कहा जाता है कि किसी समय काशी में एक ब्राह्मण-कुल की विधवा युवती रहती थी। वह नित्य सबेरे उठकर एक योगी के उपासना का स्थान झाड़ बुहार देती और लीप पोत कर साफ रखा करती थी। योगिराज ने ब्राह्मणबाला की सेवा से प्रसन्न होकर एक दिन उसको वरदान दिया कि तुम पुत्रवती होवो। इस वरदान की बात सुनते ही विधवा के सिर पर मानो बिजली टूट पड़ी, उसने घबरा कर विनती की कि महाराज! यह आपने क्या कहा? मैं ब्राह्मणकुल की विधवा हूं। मेरे पुत्र होगा तो लोग क्या कहेंगे? लज्जा और भय से अकुला कर वह अपने आत्मीयों से भी इस बरदान की बात कहने लगी।

तब सब लोगों के कहने सुनने से योगी ने दुखी होकर कहा,–" मैंने एक बार जो कुछ कहा है वह झूठ नहीं हो सकता। मेरा आशीर्बाद अवश्य फलेगा और ब्राह्मणी के पुत्र भी अवश्य होगा। परन्तु इसकी दशा पर विचार करके मैं यही कह सकता हूं कि जिस स्वाभाविक नियम से स्त्रियों को गर्भ रहा करता है, उससे यह बची रहेगी इसके दहिने हाथ में एक बड़ा फोड़ा होगा और वही फोड़ा फूट कर एक सुन्दर बालक निकल पड़ेगा। कहा जाता है कि योगी ने जैसा कहा था, समय पाकर वैसा ही हुआ। ब्राह्मण-विधवा के हाथ में एक बहुत बड़ा फोड़ा हुआ, और नवें दिन जब वह "लाहा के ताल" में बासन मांज रही थी, फोड़ा फट गया और उसमें से एक बहुत ही सुलक्षण बालक का जन्म हुआ। बिधवा लाज के कारण उसे घर न ले जासकी और रोने लगी। उसने एक बहुत बड़े कमल पर बालक को रख उसे ताल के जल में बहा दिया।

कमल पर लेटे हुए कबीर जल पर बहते हुए चले, इस समय नूरा नाम का एक मुसलमान जुलाहा किसी पड़ौसी के विवाह से घर लौट रहा था, उसने सुना कि बालक पुकार कर कह रहा है कि "तुम मुझ को काशी ले चलो।" अभी जन्मे

हुए बच्चे को बोलता सुन पहले तो नूरा उसे प्रेत समझ कर आधकोस दूर भाग गया। परन्तु वहां भी बालक उसके पास पहुंच कर शरण और भोजन मांगने लगा तो नूरा को बहुत अचरज हुआ इसके बाद उसने आकाश से देववाणी सुनी— "नूरा ! तुम इस बच्चे को पाल लो, तुम्हारा भला होगा।"

तब नूरा ने ढाढस बांध बच्चे को उठा लिया और घर जाकर उसे अपनी पत्नी को दे दिया। पत्नी का नाम नीमा था, उसके कोई सन्तान न थी। वह बड़े लाड प्यार से कबीर को पालने पोसने लगी।

हो न हो महात्मा कबीर को किसी देवता का औतार या पवित्रब्राह्मण कुल से जन्मा हुआ सिद्ध करने के लिए उनके शिष्यों ने इस आख्यायिका का प्रचार किया होगा, परन्तु कबीर के जुलाहे के घर जन्म लेने के अनेक प्रमाण पाये जाते हैं। सब जगह नूरा-नीमा के पास बचपन में कबीर के पाले जाने की कथा सुनी जाती है, अबुलफ़ज़ल ने अपनी आईन अकबरी में उनको सूफ़ी कहा है। सूफ़ी सम्प्रदाय के मुसलमान एकमात्र ईश्वर ही पर विश्वास करते हैं, वे किसी तरह की कहावतें या उपधर्म की आज्ञाएं नहीं मानते, इन लोगों का धर्ममत बहुत कुछ हिन्दुओं के अद्वैतवाद की भांति है, फिर भी

इनका नाम 'कबीर' और इनके पुत्र 'कमाल, अरबी शब्द हैं, कोई हिन्दू अपनी सन्तति का मुसलमानी नाम नहीं रखता ॥ इसलिये कबीर मुसलमान ही रहे होंगे, अपने "बीजक" नामक ग्रन्थ में कहीं २ पर ऐसे मर्मान्तक रूप से इन्होंने मुसलमान सम्प्रदाय के धर्ममत पर आक्रमण किया है कि यदि वह आप मुसलमान न होते तो वैसा कभी न कर सकते। कोई हिन्दू यदि इस तरह मुहम्मदी धर्म पर आक्रमण करता तो उस समय के शक्तिमान मुसलमान उसे भांति भांति से दुख देते और उसके प्राण तक ले लेने से न सकुचाते। कबीर की मृत्यु हो जाने पर मुसलमान अपनी जाति का समझ उनकी देह कबर में गाड़ देना चाहते थे, परन्तु सुना जाता है कि उनका शरीर फूलों की ढेरी में बदल गया और फूलों को हिन्दू मुसलमानों ने आधों आध बांट कर अपने२ साम्प्रदायिक नियमों से उनकी अन्तिम क्रिया की।

कबीरपन्थियों के तीसरे महन्त जमाल हुये, इनके बाद इस सम्प्रदाय का प्रधान पद हिन्दू महन्तों के हाथ लग गया और तब से धीरे २ इनका धर्ममत अधिकतर हिन्दू स्वरूप पाता गया, सो समय पाकर मुसलमानों की श्रद्धा इस मत से हट गयी, यद्यपि आजतक कबीरदास के चलाये हुये धर्ममत में

मुसलमानों के मानने योग्य भी अनेक उपदेश पाये जाते हैं, तब भी इन का स्वरूप हिन्दूधर्म से इतना मिलता सा हो गया है कि इसे वैष्णवों का एक सम्प्रदाय छोड़ और कुछ नहीं कहा जा सकता ॥

तुलसीदास जैसे महाजनों की नाईं कबीर के सम्बन्ध में भी बहुतेरी अलौकिक आख्यायिकाएं पाई जाती हैं।

थोड़ी ही अवस्था में कबीर के मनमें उस समय के प्रसिद्ध धर्म-प्रवर्तक वैष्णव रामानन्द स्वामी से दीक्षा लेने की इच्छा होने लगी थी, परन्तु दूसरे वैष्णवों की भांति जाति के अभिमानादि मन की संकीर्णता ने रामानन्द का पल्ला नहीं छोड़ा था नीच जातिवाले कबीर के लिए इसी कारण रामानन्द का शिष्य होकर उनके सम्प्रदाय मे मिल जाना कठिन कार्य था, परन्तु कबीर ने जिस काम को अपना कर्त्तव्य समझ लिया उसे छोड़ देने वाले वह नहीं थे, जैसे बने स्वामी जी के दल में प्रविष्ट होना ही होगा, ऐसी प्रतिज्ञा कबीर ने अपने मन में ठान ली परन्तु बहुत काल तक अपने मनोरथ सिद्ध होने का कोई उपाय न देख उनको बहुत चिन्ता होने लगी और उत्साह भी टूटने लग गया। अन्त में आगे लिखी हुई चतुराई से उनकी आशा पूरी हो सकी थी।

रामानन्द बड़े तड़के, कुछ अंधेरा रहते हुए ही, नित्य गंगास्नान को जाया करते थे। एक दिन स्वामीजी स्नान करने को गंगा जल में उतरे थे, आकाश में कुछ बादल छा रहे थे, रात का अंधेरा बिलकुल नहीं हटा था, राह बाट अच्छी तरह नहीं देख पड़ता था, ऐसे समय कबीरदास धीरे धीरे घाट के पास जाकर चुपचाप एक संकीर्ण सीढ़ी पर जाकर लेट गये। उधर रामानन्द स्नान कर जब मठ को लौटने के लिये सीढ़ियों पर चढ़ने लगे, तो उस सीढ़ी पर पांव रखते ही कबीर का निश्चल शरीर उनके चरणों के नीचे आगया। किसी अपवित्र मुर्दे पर पांव पड़ गये हैं, ऐसा जान स्वामी जी "राम! राम!" बोल उठे। कबीर ने भी तभी गुरु रामानन्द के मुख से निकले हुए तारक ब्रह्म रामनाम को बीजमन्त्र मान लिया और उसे ज़ोर २ से कहते हुए वह दूर हट गये।

कबीर के शिष्य लोग उनकी दीक्षा के सम्बन्ध में इसी कथा को कहा करते हैं। इसके उपरान्त दूसरी कथा भी कबीर के वैष्णव-सम्प्रदाय में प्रवेश पाने और रामानन्द के शिष्य होने के विषय में सुनी जाती है। रामानन्द जी पहले रामानुज स्वामी के सम्प्रदाय में थे। रामानुजी वैष्णव लोग जाति पांति और भक्ष्याभक्ष्य के लिये बड़े कट्टर होते हैं। रामानन्द तीर्थदर्शन

और देशाटन करते हुए भारतवर्ष के अनेक स्थान घूम आये थे। देश विदेश की इतनी लम्बी यात्रा में भक्ष्याभक्ष्य का विचार और जाति के नियमों की सम्पूर्ण रक्षा करना सम्भव नहीं। ऐसा विचार उनके सम्प्रदाय वाले साधु लोग रामानन्द के लौट आने पर, उनसे बहुत घृणा करने लगे। यहां तक कि सबने उनको जाति से बाहर कर दिया और कोई उनको संग लेकर भोजन न करता। इन सब अनुचित बर्तावों से दुखी होकर रामानन्द ने अलग एक सम्प्रदाय चला दिया। यह सम्प्रदाय अपने प्रवर्तक के नाम से रामानन्दी कहलाता है गुरु रामानुज के अनुगामी बैष्णवों में जिस प्रकार जातिभेद और कट्टर संस्कारों की चलन है, इस नये सम्प्रदाय में उस का कुछ भी न रहा। हिन्दू मुसलमान और नीच जाति के लोगों को भी अपने दल में मिला लेने से रामानन्द नहीं सकुचाये। 'हरि को भजे सो हरि का होय'—सब मनुष्य भाई २ हैं, सभी अपनी २ साधना से साधु बन सकते हैं, इसी मत का वह बड़े उत्साह से प्रचार करने लगे। ऐसा अवसर पाकर बहुतेरे नीच जाति के लोग रामानन्द के शिष्य बन कर उन के सम्प्रदाय में घुस आये। रविदास नाम का एक चमार, सेन नाम का एक नाऊ और जुलाहा कबीर ऐसे लोगों में प्रधान थे। उन के शिष्यों में उच्च राजपूत

कुल का पीपा, भवानन्द, सुडसुडानन्द, सुखानन्द आदि के नाम भी पाये जाते हैं ।

ऊपर जो कुछ लिखा गया, उस से यह न समझना चाहिये कि कबीरदास अनायास ही रामानन्दी दल में मिलाये जा सके। स्वामी जी यद्यपि नीच जातिवालों को अपने सम्प्रदाय में ले लेने से नहीं सकुचाते थे, तब भी निम्न श्रेणी के ऐसे ही लोग लिये जाते थे जो बुद्धि, चरित्रबल और साधन भजन में विशेष बड़प्पन दिखा सकते थे। ऐसे लोग अवधूत कहाते थे और ऐसा माना जाता था कि वे अपनी उन्नति आत्मा के प्रभाव से जाति पांति के बन्धनों की सीमा से बाहर हो चुके हैं। होसकता है कि रामानन्द का शिष्यत्व पाने के लिये कबीरदास को बहुत काल तक ठहरना पड़ा होगा या मठ में सेवा टहल आदि भांति २ की परीक्षाओं के आधीन रहना पड़ा होगा।

कबीरदास के विद्याभ्यास की बात कुछ नहीं जानीजाती। पर यह बात एक प्रकार से निश्चित ही है कि वह बहुत ही बुद्धिमान् थे और रामानन्द के शिष्य हो जाने पर हिन्दू-धर्मशास्त्र का ज्ञान भी उनको बहुत हो गया था। रामानन्द के बारह शिष्य माने जाते हैं। उन सब में कबीरदास का स्थान ही

सर्वश्रेष्ठ है। विद्या, बुद्धि और तपोनुष्ठान में उनके सतीर्थों में से कोई भी उन की बराबरी नहीं कर सकते थे। इस लिये गुरु उन को बहुत मानते थे। उच्च जातिवाले शिष्य जुलाहे के बेटे को सब बातों में बढ़ा चढ़ा देख और इसीं लिये उस पर गुरु की विशेष कृपा जान भीतर ही भीतर कबीर से डाह भी रखते थे। पर जब कभी वे लोग इसे जताने की चेष्टा करते कबीर की बुद्धि, विद्या और भजन साधन के प्रभाव से उन सबको नीचा देखना पड़ता था।

कबीरपंथियों से सुना जाता है कि गुरु रामानन्द नित्य प्रति सबेरे स्नान करके सब से पहिले खीर बना कर उस से देवता और पितरों की पूजा करते थे। इस लिये सूर्य निकलने से पहिले ही उन को ताज़े दूध का प्रयोजन रहता था। यह दूध लाने का काम वारी वारी से बारहों चेलों पर सौंपा हुआ था। जिसदिन जिसकी वारी होती उसदिन वही चेला रात रहते ही जग कर दूध ले आता था। इतने सबेरे ही दूध ले आना कोई साधारण काम नहीं था। कबीर को छोड़ दूसरे चेले बड़ी कठिनाई से थोड़ा बहुत दूध ला सकते थे। पर जिस दिन कबीर की वारी होती थी उस दिन कभी दूधकी कमी नहीं होती। गुरु स्नान कर मठ में आकर देखते कि कबीर एक बहंगी में

दो घड़े भर कर दूध लाकर उपासना की ठौर पर खड़े हैं। इस बात से रामानन्द कबीर से जितना प्रसन्न होते, दूसरे चेलों में उतना ही विद्वेष भाव भर जाता।

एक दिन रामानन्द के दूसरे चेलों ने छिप कर सलाह की कि हम लोग सभी गुरू के लिये दूध लेने जाया करते हैं पर बड़ी कठिनाई से थोड़ा सा दूध हमारे हाथ लगता है। कबीर कहां से थोड़ी ही देर में इतना अधिक दूध ले आता है सो आओ हम लोग छिप कर उसके पीछे २ चलें और देखें, कैसे जुलाहानन्दन को इतना दूध मिलजाता है ?

निदान जब कबीर की वारी आई अंधेरा रहते ही वह गुरुद्वारे से बहंगी लेकर चले। उनके पीछे तीन गुरुभाई भी छिप कर चले। देखते ही देखते कबीर एक गोमती (गौओं का मुर्दघटा) के पास पहुंचे और वहां बहंगी उतार घड़े रख दिये। तीनों गुरुभाई छिपे हुए कबीर का कार्य देखने लगे। कबीर थोड़ी देर तक नेत्र मूंद कर खड़े रहे। फिर बोले "जुटो, जुटो, जुटो," (यानी जमा हो जाओ)। इन शब्दों के कहते ही चारों ओर बिखरी हुई हड्डियां बटुर कर मिल गयीं ; कबीर ने फिर कहा, " सजो, सजो, सजो, " और रुधिर, मांस, चमड़ा, रोम आदि से वह कंकाल ढकगया।

फिर "उठो, उठो, उठो, " का आदेश सुनते ही एक दूधवती जीती जागती गाय उठ कर खड़ी हो गयी। तब कबीर ने झटपट दोनों घड़ों को गाय के थनों के नीचे रख कर कहा, " भरो, भरो, भरो, "। इन बातों के कहते ही कई धारों से घड़ों में दूध भरने लगा। बात की बात में घड़े भर गए। इसके उपरान्त कबीर का आदेश सुनते ही गाय लेट गयी रक्त मांस, चर्मादि सब अदृश्य हो गये । हड्डियां भी पूर्ववत् जो जहां पड़ी थीं वैसे ही जापड़ीं। कबीर घड़े उठाकर चलेगये।

सन्ध्यापूजन से निपट गुरु रामानन्द ढेर सा दूध लाने के लिए कबीर की बड़ी प्रशंसा करने लगे और दूसरे शिष्यों के आलस्य की बात कह कर मानों उनकी निन्दा करने लगे। इस से शिष्यों के मन में द्वेष और क्रोध भर आया। उन में से एक ने हाथ जोड़ कर कहा, "महाराज! हम सब आपके शिष्य हैं, आप हमको जिस काम के लिये आज्ञा दें वही हम सिर माथे चढ़ा लेवेंगे, पर जो बात असली है, उसे कहें तो आप हम से नाराज़ न हों। बहुत सबेरे सीधे और पवित्र रीति से दूध लाना सच मुच ही बहुत कठिन काम है। इस लिये हम ग्यारहों भाई अपनी अपनी बारी के दिन बड़ी कठिनाई से जितना दूध मिल सकता है ले आते हैं। हम सब में अकेला

कबीर दो घड़े दूध ले आता है। कहां से और कैसे लाता है? हम लोग अभी तक नहीं जानते थे। आज सबेरे हमने गूढ़ समाचार जान पाया है, गुरूजी! यह सत्य है कि हम लोग बहुत थोड़ा सा ही दूध लाते हैं, पर यह बड़ा पवित्र और सच्ची रीति से मिलता है, और आपकी पूजा में लगने योग्य है। पर कबीर जो दूध लाता है षह इन्द्रजाल से मिलता है, अपवित्र हैं छूने योग्य नहीं—वह इसे गोमती से लाता है। देवता की पूजा या पितरों के श्राद्धयोग्य नहीं है। यों कह कर कबीर जिस रीति से दूध लाते थे, वह सब उस चेले ने गुरू से कह दिया। चेलेसे सारी कथा सुन रामानन्द को बड़ा अचरज हुआ और वह कबीर से पूछने लगे, क्या यह बात सत्य है? कबीर बोले "हां सत्य है"। परन्तु दूध कभी इन्द्रजाली नहीं है, न वह अपवित्र ही है। पाप-परिपूर्ण इस संसार में पवित्र सुरलोक का ज्ञान जगानेवाली गोमती भूमि को अपवित्र कैसे मानें? जहां मल, मूत्र, इन्द्रिय-सेवा, मिथ्या, धोखाबाज़ी, असहायों का पीड़न, अत्याचार आदि दुष्कर्म नित्य हुआ करते हैं उस संसार को तो पवित्र मान लें और जहां इन सबका चिन्ह तक नहीं वरन् मरे सूखे अस्थि पंजरों से शरीर का नश्वरत्व और संसार की अनित्यता की रात दिन सूचना मिला करती है, वही स्थान घृणित और अपवित्र हो, ऐसी बात कैसे मानी जा

सकती है ? मरे जीते म भेद मानना क्या ज्ञानी का काम है? सब चीज़ों के बटोरने के लिये दैवीशक्ति भी किस युक्ति से मानवी उपायों से बुरी मानी जा सकती है ? साधन भजन से हुई अलौकिकी शक्ति और इन्द्रजाल में क्या कुछ भेद नहीं है ? इसलिये मेरी विनती यही है कि आप मेरे गुरुभाइयों के मोहमय वचनों से मोहित होकर मुझको दोषी न समझें ।

कबीर की बातें सुन और उसके अलौकिक ज्ञान और सामर्थ्य की बात पर विचार कर रामानन्द स्वामी, उनसे नाराज़ होना तो दूर रहा, उनपर बहुत ही प्रसन्न और श्रद्धालु होगये वह दूसरे चेलों से कहने लगे, बच्चो ! कबीर को तुम लोग तुच्छ मत समझो । उसकी अमानवी शक्ति देख अब तक तुम लोग उसके चरणों पर नहीं गिरते। यही विचित्र है। वह है तो मेरा चेला पर अपने मनमें गुरुकी नाईं उसकी भक्ति किए बिना की मुझसे नहीं रहा जाता । तुम लोग कहते हो कि गोमती से लाया हुआ दूध अपवित्र है, पर सोचकर यह नहीं देखते कि मरी गाय के हाड़ पंजर से जीती गाय कैसे आई ? और उसके दूध भी कैसे होगया ? सो द्वेष ईर्षा छोड़ कबीर के शरणापन्न बनो। ऐसे महापुरुष के संग रहोगे तो तुम लोग भी कृतार्थ हो सकोगे। मैं तो कबीरके लायेहुये दूधसे पित्रोंका कार्य करनेका अधिकारी होसका हूं इसीलिये अपने आप को धन्य मानता हूं।

कबीर की असाधारण बुद्धिमानी और धर्मबल देख रामानन्द को उनमें श्रद्धा करनी ही पड़ती, पर उनके मतों की विचित्रता, औदार्य, नये २ भाव और दुर्दम सार्वभौमिकता देखकर स्वामी कभी२ उनसे बहुत चिढ़ भी जाते थे। आध्यात्मिक तत्त्वों के सूक्ष्म २ विषयों पर गुरु शिष्य में घोर वाग्युद्ध हुए विना एक भी दिन नहीं बीतता। इससे धीरे२ दोनों में अन-बन होने की शंका होने लगी। ऐसी दशा में कबीर ने रामानन्दी सम्प्रदाय छोड़ अपने मत वालों के साथ एक नया सम्प्रदाय स्थापित कर दिया। धर्म के संबन्ध में सब हिन्दू मुसलमानों को समानता के एक ही मैदान में लेआना उनका प्रधान उद्देश्य था। इस अभिप्राय से, दोनों धर्मों में जो कुछ कुसंस्कार और झूठे आडम्बर उनको देख पड़ते, तीक्ष्ण युक्ति और तीव्र प्रति-वाद से उन सबके विरुद्ध खड़ा होने से वह कभी नहीं हटते थे। कभी २ पण्डित और मुल्लाओं के ज्ञानाभिमान का उल्लेख कर उनकी हंसी उड़ाने से भी वह नहीं रुकते थे।

सब धर्मों का समन्वय और जाति पांति तोड़ देने के लिये उचित रीति से उद्यम भारतवर्ष में कबीरदास ही ने सब से पहले किया है। उनकी राय में जीवहिंसा के समान महापाप जगत् में दूसरा नहीं है। सब मनुष्य बराबर

और भाई के नातेसे बंधे हुए हैं। ईश्वर सृष्टि, स्थिति, प्रलय नहीं करते। जीवात्मा साधन करते करते ज्ञान प्राप्त कर अन्त में ब्रह्मविलीन हो जाता है। सब धर्मोंका सार ले लो, किसी धर्म से द्वेष मत रखो। संक्षेप में उनका धर्म कुछ २ अद्वैतवाद की छाया से बना हुआ है।

पहिले ही कहा जा चुका है कि अनेक दिनोंके कुसंस्कार और उपधर्मों की प्रबलता के उपरांत स्वाधीन धर्म प्रचार के लिए भारतवर्ष में एकसे एक धर्म-प्रवर्त्तक महाजनोंका अभ्युदय होता रहा है। पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में इस जाति के अनेक प्रसिद्ध महात्माओं का आविर्भाव देखने में आता है। बंगाल में चैतन्य महाप्रभु, वाराणसी में कवीरदास, पंजाब में नानकशाह और दाक्षिणात्य में तुकाराम इसी समय ही में अवतीर्ण हो कर मनुष्य समाज के भ्रमप्रमादों को नष्ट कर सत्य धर्म का प्रचार कर गये हैं। रामानन्द स्वामी सब से पहले जातिभेद पर आधार रखने वाले और कट्टर संस्कारों से जकड़े हुए वैष्णव धर्म के विरुद्ध खड़े हुए थे। परन्तु उनका प्रचारित मत उचित रीति की तेजस्विता न रहने से वह बहुत सफल न हो सका। परन्तु ऊपर कहे हुए महात्माओं की चेष्टा से संकीर्ण भाव बहुत कुछ हटाये जा सके थे।

रामानन्दी सम्प्रदाय छोड़ने के साथ २ कबीर ने गृहस्थ धर्म और अपने पुत्र कलत्र और काम धन्धा भी सब छोड़ दिये। अपने मत का प्रचार और धर्म सम्बन्धी विचार करने के लिये इस समय वह देशाटन करने लगे। गुरु रामानन्द के साथ यद्यपि बहुधा उनकी राय नहीं मिलती, तब भी वह गुरु की हृदय से भक्ति करते और समय २ पर उनसे मिलने जाया करते थे। ऐसे अवसरों पर कुछ दिन तक अपने पुराने संगियों के साथ फिर उनका रहना होता और धर्मभाव के सुनने सुनानेका भी अवसर आ जाता।

आसक्ति या कामनाओं से छुटकारा पाये विना मनुष्य के लिये मुक्तिपद पानेकी सम्भावना नहीं है, इस बात की उदाहरण स्वरूप यहां पर एक आख्यायिका कही जाती है। इस जाति के आख्यानो में अलौकिकता अंग बहुत रहने पर भी इसके सार भाग पर मनन करने से अच्छा उपदेश मिल सकता है। कहा जाता है कि रामानन्द स्वामी के अखाड़े में एक बड़ा भारी नगाड़ा था और उसे बजाने के लिये उस पर दो डंडे भी रखे रहते थे पर किसी ने कभी उसे बजाये जाते नहीं देखा था काम में न लाये जाने से नगाड़े पर बहुत सी धूल जम गयी थी और जहां तहां मकड़ियोंके जाले भी भर गये थे। स्वामी

जी के शिष्योंने एक दिन उनसे बिनती की कि "भगवन्! हम लोग इस नगाड़े को बराबर बेकाम पड़ा हुआ देख रहे हैं, यह कभी बजाया नहीं जाता। आज्ञा हो तो पूजा आरती के समय हम लोग उसे बजाया करें।" इस बात को सुन स्वामी जी ने कहा, "इसको कभी बजाये न जाते देख तुम्हारे मन में उत्कंठा होनी स्वाभाविक बात है। पर पूजा आरती के लिये बजाये जाने को वह नहीं रखा गयाहै। जब मेरा शरीर छुटेगा और मैं बैकुंठ जाऊंगा तो यह नगारा तुरंत आप से आप बजने लगेगा।" शिष्य लोग इस बात को सुन कर विस्मित हो गये, पर कुछ बोले नहीं।

इस घटना के कई वर्ष पीछे रामानन्द स्वामी को कठिन रोग हो गया। होते २ उनकी दशा बहुत बिगड़ने लगी और अन्त में उनकी बोली बन्द होगयी और शरीर निष्पन्द होगया केवल दोनों नेत्र खुले थे, पर वह कुछ देख सकते थे या नहीं यह कुछ भी नहीं जान पड़ा। शिष्यों ने देखा, गुरुका अन्त काल आ पहुंचा, अब वह नहीं बचेंगे। तब उनको कोठरी के बाहर ले जाना उचित समझा गया। मठके कोठे के बाहर बड़ी छाया देनें वाला एक बहुत बड़ा बेर का पेड़ था। सब लोगों ने मिल कर गुरु को उसी की छाया में लाकर सुला दिया।

उस समय रामानन्द जी को करवट बदलने तक की शक्ति नहीं थी, सो वह चित्त ही पडे रहे। नेत्रों के पलक ही गिर जाते और कभी २ उन में से आंसू की धारा निकल पड़ती थी। जीवन का कोई चिन्ह नहीं जान पड़ता था। कुछ काल तक इसी तरह पड़े रहनेपर स्वामीजी के प्राण निकल गये। शिष्यों ने पहिले तो बहुत शोक मनाया फिर मृत शरीर को सब लोग अन्तिम क्रिया के लिये ले गये। इस समय कुछ दिन पहिलेही से कबीरदास भी गुरुद्वारे में आ कर ठहरे हुए थे।

दूसरे दिन सवेरे सब लोग बैठकर स्वामी के गुणों का बखान और उनके निर्मल जीवन की बहुत प्रशंसा करने लगे। इतने में एक चेले ने सबको पुकार कहा भाइयो! जीवित दशा में गुरूजी कहा करते थे कि जब वह वैकुंठ जायंगे उस समय अखाड़े का नगाड़ा आप से आप बजने लगेगा। अब गुरू महाराज का क्या हुआ? वह नगाड़ा क्यों न बजा? तो क्या स्वामीजी की बात मिथ्या होगई, या वह बैकुंठ नहीं गये? इस बात के छिड़ते ही चेलों में बड़ी खलबली मच गई। सब लोग कहने लगे सच तो है; गुरू महाराज ने कई बार कहा था कि उनको बैकुंठ जाने के दिन वह डंका आप से आप बजने लगेगा। किसीर ने कहा, ऐसा तो हो ही नहीं सक्ता

कि रामानन्द बैकुंठ नहीं गये; पर उनकी बात सत्य न निकली ऐसा कहना ही पड़ेगा। किसी ने कहा, बैकुंठवास उनको मिले चाहे न मिले, पर मैं इसे नहीं मान सकता कि उनका वचन मिथ्या हो सकता है। इसी भांति बतकही होती रही, पर कुछ निश्चय न हुआ। अब तक कबीरदास एक किनारे बहुत उदास होकर कुछ सोच रहे थे, और इस बतकही में कुछ भी भाग नहीं लेते थे। उनके गुरुभाई अब तक कुछ घृणा और ईर्ष्या ही की दृष्टि से देखा करते थे। इसलिये कोई उनसे अब तक विशेष रूप से कुछ न पूछता तो वह मौन ही साधकर बैठे रहते थे। परन्तु उनके श्रेष्ठ ज्ञान और तपस्या की बात सभी लोग मन में मान लेते थे। इस समय एक चेले ने पूछा, "क्यों कबीर? तुम तो हम सब में प्रधान हो, अपनी बुद्धिमानी से तुम एक नये सम्प्रदाय के स्वामी पद पर प्रतिष्ठित हो चुके हो। तुम अब तक चुप क्यों बैठे हो? कहो तो तुम्‍ारी क्या सम्मति है? कबीर ने छु भी बिना सोचे बिचारे कहा, "हे सन्तो! गुरु रामानन्द स्वामी की बात कभी झूठ नहीं हो सकती। वह बैकुंठ गये होते तो डंका आप से आप ज़रूर बज उठता।" "तो क्या रामानन्द स्वामी को बैकुंठ लाभ नहीं हुआ? जो उनके ऐसे साधु को बैकुंठ न मिला तो वहां और कौन पहुंच सकता है?" यों कहकर सब लोग हुल्लड़ मचाने लगे।

कबीर फिर बोले "सन्तो ! संसार की कामना छोड़े बिना जीव की मुक्ति नहीं हो सकती। इस कामना ही से खींचे जाकर मनुष्य बार२ संसार में आवागमन करता रहता है। भगवान के न्याय और करुणा की बात यहां पर स्पष्ट रूप से जानी जाती है। जिस प्रबल भोग बासना का अन्त नहीं हुआ, उसके लिये यदि जीव संसार को तज दे, तो उसे बड़ा दुःख होता है और वह अपने आप को कैसा दुर्भाग्यवान समझता है ? वह सोचता है कि मनुष्य का चोला उसे न मिलता तो अच्छा था। ऐसी इच्छा को अपूर्ण छोड़ देना दयालु परन्तु सर्वशक्तिमान जगदीश्वर की प्रकृति के विपरीत है। और भी यही विषयवासना मुक्ति को रोकने वाली और बहुधा नरक की छाया के समान होती है। परन्तु स्वाधीन इच्छा का परतंत्र मनुष्य-आत्मा अपनी आसक्ति से आकृष्ट होकर जलते हुए दीपक में कीड़ों के जलने की भांति इस दहकते हुए नरक में आगिरता है। प्रकृति ही के नियमानुसार उसको ऐसा करना पड़ता है। बार २ इन सब विषय भोग की प्रबल अग्नि में जलते २ जब उसपर से उसकी बासना हटकर वैराग्य का उदय होता है, तभी आसक्ति रहित आत्माराम संसार में लौटने से रुक जाता है और जीवात्मा मुक्ति पद पाकर अपने को कृतार्थ समझने लगता है। हमारे गुरु महात्मा रामानन्दजी भी हो न हो किसी तरह की आसक्ति

या कामना से आकृष्ट होकर फिर संसार में लौट आये हैं। अनासक्त होकर वह वैकुंठ नहीं जा सके है। ''

कबीरदास की बातें सुन सब चेलों ने बुरा मान लिया और वह कहने लगे, 'तो क्या तुम्हारी सम्मति में वैरागी श्रेष्ठ रामानन्दी से भी संसार की आसक्ति नहीं छुट सकी ? '' कबीर बोले, ''मैं ठीक इस तरह नहीं कहता हूं। रामानन्द बड़े उच्च श्रणी के उपासक थे। बहुत सी बातों में वह सांसारिक बासना छोड़ने और इद्रियसंयम में सफल हो सके थे। पर कभी २ एक छोटीसी बासना जीव की मुक्ति का मार्ग रोक रखती है। उच्च कोटि के उपासक भी कभी २ किसी बहुत छोटी सी आसक्ति के आधीन बन जाते हैं। स्वामीजी को भी इसी तरह की किसी विषय की भोग इच्छा मृत्यु के ठीक पहले होगई होगी। जिसको पूरा करने का तपोबलसे दबा रखने का अवसर उनको न मिला होगा। इसी लिए उनको फिर इच्छानुसार फल भोगना पड़ रहा होगा। ''

ज्ञानी कबीर ने जब ये सब बातें कहीं तो रामानन्द के शिष्य लोग बहुत क्रोध कर कहने लगे, ''कबीर! तुम भक्तों के अगुए हो, परन्तु तुमने अपने गुरू को विषयासक्त साधारण मनुष्यों का सा बताया है, इसलिए तुमको हमारे हाथ से सहज

में छुटकारा न मिलेगा । तुमने जो बात कही उसको उचित प्रमाण देकर सच्चा सिद्ध करदो, नहीं तो तुमको स्वर्गबासी योग-परायण गुरु का निन्दाकारी कह कर हम सबके पास तुम्हारा अपयश फैला देंगे । कबीर ने कहा, "अच्छा कैसे प्रमाण से तुमको हमारी बात का विश्वास होगा ? " चेले बोले, "तुम प्रत्यक्ष प्रमाण से बता दो, किस भोग वासना के साथ स्वामी परलोक गए हैं और वहां उस के फल से उनकी गति कैसी हुई है ?" कबीर बोले "अच्छा चलो, अन्तकाल में गुरू जहां पर थे, सब लोग मिल कर वहां चलें और वहां की चीज वस्तु देखें, कुछ पता लग सकता है या नहीं, यही देख लिया जावे ।"

इस प्रकार बात चीत के पीछे रामानन्द स्वामी जीवन की अन्तिम दशा में जिस बेर के पेड़ के नीचे रक्खे गये थे, वहीं सब लोग जा पहुंचे । सब लोग कहने लगे, "यहां पर गुरू जी सोये हुए थे, यहां उन के दोनों पांव थे, शरीर इस ठौर पर और सिर यहां था, उन के नेत्र इस तरह थे।" जब इस भांति बात चीत हो रही थी, जहां पर स्वामी के नेत्रों के रहने की सम्भावना जान पड़ी,कबीर ने उसके ऊपर की ओर देखा । ऊपर दृष्टि डालते ही एक बहुत सुन्दर सुनहरे रंग का बेर बहुत

बड़ा और हरे पत्तों में से लटका हुआ देख पड़ा। इस फलको देखते ही कबीर बोल उठे "होगया। यहां पर स्वामी जी का मस्तक था। और वह ऊपर ही देख रहे थे। मृत्यु समय इस मनोहर फल को देखा। इसे खाने की बड़ी भारी इच्छा उनके मन में होने लगी थी। उस समय उनको इतना ज्ञान तो था, पर वह न बोल सकते थे, न हाथ उठा कर ही बता सकते थे। सो वह किसी तरह मन की बात न बता सके। इसी दशामें उन के प्राण निकल गए और भोजन की इच्छा पूरी होते न होते वह चल बसे। सो वह अभी तक बैकुंठ नहीं पहुंचे हैं। बेर खाने की प्रबल आसक्ति से आकृष्ट होकर वह इस बेर के भीतर कीट-योनि में बेर का स्वाद ले रहे हैं।"

रामानन्द के चेलों को कबीर की ऐसी अचरज भरी बात सुन शोक और उत्कण्ठा दोनों सताने लगीं। वे कहने लगे। "कबीर! इस बात के लिये अभी बहुत प्रमाण होना चाहिये। हम बेर को पेड़ पर से तोड़े लाते हैं। अब तुम सिद्ध करो कि तुम्हारी बात झूठ नहीं है।" ऐसा कह कर एक चेला बेर को तोड़ लाया। फल बहुत ही सुन्दर और खूब पका हुआ और बहुत बड़ा था सब लोगों ने अच्छी तरह देख लिया, उस के ऊपर कोई छेद नहीं था। तब वे कहने लगे, 'इस

के भीतर कीड़े का बैठना किसी तरह सम्भव नहीं' । कबीर ने कहा, "इसे तोड़ कर देखो, सब शंका दूर हो जायगी" । इस पर किसी ने बेर के दो टुकड़े कर डाले । उस के टूटते ही भीतर से हरे रंग का एक कीट पृथ्वी पर गिर कर रेंगने लगा कबीर बोल उठे, "यह देखो स्वामी रामानन्द हैं । कहां वैकुण्ठ और कहां यह ? नगारा कैसे बजता ?" सब चेले लोग विस्मय और लज्जासे कुछ देरतक चुप होरहे । निदान एक बोल उठा, "कीड़े तो बेरों के भीतर बहुधा हुआ ही करतेहैं । यही गुरू महाराज हैं, इसका प्रमाण कहां ? "अभी और भी प्रमाण चाहते हो ?" ऐसा कह कबीर ने राम राम कहते हुए अपने पांव से लगे हुए खड़ांव से कीड़े को कुचल दिया , और उसी क्षण "कड़ कड़कड़" शब्दसे नगारा बजने लगा , तब कबीरने सब को पुकार कर कहा, "वह देखो गुरू रामानन्द वैकुन्ठ जा रहे हैं । उन की बात भी कभी मिथ्या हो सकती है ?"

इस के उपरान्त, बनारस के आस पाससे कुछ चेले बटोर कर कबीर देशाटन करने लगे । जहां कोई अखाड़ा या किसी तरह धर्म मन्डली देखते, वहां के महन्त या प्रधानों के साथ धर्म मत पर विचार करते । बहुत जगह प्रतिपक्षी साधु और पंडितों को तर्क में परास्त कर अपने सम्प्रदाय में मिला लेते

थे। इस भांति वह मध्य भारत और दाक्षिणात्य के अधिकांश नगरों में घूम आए और वहां के प्रधान हिन्दू और मोहम्मदी आचार्यों को हरा कर उन लोगों में अपना धर्म मत स्थापित किया। उसी समय झूसी † ग्राम के रहने वाले शेख तकी नाम के मुसलमान से बड़े जोर का धर्मविचार हुआ। कबीर की एक रमैनी * में जिस तरह तकी को हराया था, उसका पूरा वर्णन दिया हुआ है।

कबीर की सारी प्रचारयात्राओं का व्यय जहां तहा के धनी लोग दिया करते, इस लिये यात्रियों के भोजन आदि के लिये कुछ चिन्ता न करनी पड़ती। साधुओं की सेवा करना तो इस देश के वासियों का एक प्रधान गुण माना ही जाता है।

कबीरदास ने नया सम्प्रदाय बना कर इस भांति अपना मत प्रचार करने का लग्गा लगा दिया; सत्य का झन्डा अनुकूल समय पाकर बड़े वेग से उड़ने लगा। वह कट्टर ब्राह्मणों के प्रतिष्ठित उपधर्मों पर बड़ी निर्दयता से आक्रमण करने लगे।

---

† यह झूसी कहां है इसका पता नहीं। प्रयाग नगर के गंगा के दूसरे पार तट ही पर झूशी नाम का एक ग्राम है।

* रमैनी एक प्रकार की छन्द श्लोकों की समष्टि है।

उनके धर्म का मूल-सूत्र पुराण आदि के मतों का सम्पूर्ण विरोधी था। सामान्य लोग उन के उपदेशों को बड़ी श्रद्धा और मन से सुनने लगे ओर सारे देश भर में एक भारी हलचल मच गई। ईश्वरोपासना के लिए देश में जो सब युक्तिरहित अनुष्ठान जारी थे, उनकी असारता को वह बड़ी सूक्ष्म रीति से प्रमाणित करने लगे!

अब कबीरदास अपना धर्म प्रचार करनेके लिए बहुत यत्न करने लगे। देश भर के स्थानों में हजारों मनुष्य उन से दीक्षा लेकर उनके शिष्य बनने लगे। कहा जाता है कि कटक बम्बई पुरुषोत्तम और बिहार प्रान्तों में उनके अनेक मठ स्थापित हो गये थे। उन में से आज तक बारह मठ वर्तमान है। इन सब में काशी का 'कबीरचौरा' सब का प्रधान माना जाता है ; दूसरे मठों के साधू इस 'कबीरचौरा' के दर्शन को काशी जाय करते हैं।

कबीरदास ने विवाह किया था। और उन के सन्तति भी हुई थी, इस बात को उनके हिन्दू शिष्य मानना नहीं चाहते। परन्तु उनके स्त्री पुत्र थे और उस समय के जुलाहों की रीति से बचपन ही में उन का विवाह हो गया था। कहा जाता है

कि कबीर की पत्नी एक अक्षर भी नहीं पढ़ी थी और जनानों में रही थी, जिस पर भी अपने पति के धर्ममत में उस को विशेष ज्ञान होगया था। वह समय २ पर ईश्वर और जीव-निस्तार विषयों पर बहुत ही कूट और दुर्बोध्य तत्वों पर कबीर के साथ विचार करती थी। परन्तु इन सब बातों की सचाई निश्चित करना सहज नहीं है।

इस बात का प्रतिवाद कोई नहीं करता कि कबीर के कमाल नाम का एक पुत्र था और वह आगे चल कर बम्बई मठ का महन्त हुआ। पर कबीरपन्थी लोग कहते हैं कि कबीर का औरस पुत्र नहीं था। इस बात को प्रमाणित सिद्ध करने के लिये नीचे कही हुई एक असम्भव आख्यायिका कहा करते हैं। कबीरपंथियों में ऐसा संस्कार है कि पशु पक्षी आदि सब जीवों की अलग अलग एक एक भाषा है और कबीरदास तपोबल से इन सब भाषाओं को समझ लेते थे। एक दिन रात के समय काशी के गंगातट से होकर कबीरदास जारहे थे। इतने मेंकुछ गीदड़ चिल्लाने लगे। कबीर ने ध्यान से उन की बात सुन कर जान लिया कि वे कह रहे हैं कि "गंगा की धारा में एक मुर्दा बहा जा रहा है; कोई उसे किनारे पर लगा दे तो हम लोग उसे खा लें।" कबीरने यह बात सुन अपनी दैवीशक्ति

से गंगा जल में विना उतरे ही शव को किनारे मंगवा लिया। जब गीदड़ उसे खाने चले तो मछलियां बोल उठीं "देखो कैसा अन्धेर है, हमारा भोजन छीन कर यह स्यारों को खिला रहे हैं। हमने कौन सा पाप किया कि हमारा भोजन हम से छिन गया और गीदड़ों ही ने कौन सा पुण्य किया है कि इन को भोजन मिल रहा है? है यहबड़ी अनीति।" इस बात को सुनते ही कबीर की आंखें खुलीं। वह सोचने लगे, "सच तो है। मछलियों का भाग मैंने किस न्यायसे गीदड़ों को दे डाला; और अब गीदड़ों से भी यह मांस का लोथड़ा कैसे छीनलूं? सो इसे किसी को न दें तो अच्छा होगा।" ऐसा सोच कबीर ने मुर्दे को जिला कर उसका नाम कमाल रक्खा और उसे अपना पुत्र मान लिया। कबीरदास के कोई दूसरी सन्तति थी या नहीं, ठीक नहीं कहा जा सकता। कोई रही भी होगी तो गृहस्थी छोड़ जब वह घर से निकल गये, उस समय कोई उन के संग नहीं गया था, इतना अच्छी तरह समझ में आजाता है।

जब कबीर ने देखा कि लोग उन को बहुत मानने लगे हैं, और उनके धर्म पर सब की श्रद्धा बढ़ने लगी है, उस समय वह अपने आत्मीय स्वजनों को छोड़ काशी वाले कबीरचौरे में रहने लगे। अकेले ब्राह्मण जाति वाले उनसे द्वेष रखते और घृणा की दृष्टि से देखते थे। वे कबीर को अपना प्रधान शत्रु

और नीच कुल का जानते थे। सब को छोड़ कर चले जाने से उनके परिवार वाले भी उनसे बहुत नाराज़ होगये। इस समय उनके पिता जीवित नहीं थे। परन्तु मुसलमानी धर्म छोड़ देने के कारण उनकी माता ने दिल्ली के बादशाह सिकन्दर लोदी के पास उनके ऊपर नालिश करदी। बादशाह ने उन को बुला भेजा तो वह तिलक और तुलसी की माला पहिर कर• उस के सामने गये। भक्तमाल में शाही दरबार में उन के न्याय की जो कथा लिखी है वह अलौकिक है। लिखा है कि बादशाह के सामने पहुंचने पर उनको झुककर कोर्निश करने की आज्ञा मिली। पर वह ऐसा न कर बोले "रामको छोड़ किसी दूसरे को मैं नहीं जानता। बादशाह के सामने क्यों झुककर सिर नवाऊं?" बादशाह ने इस बात से बुरा मान कर हाथ पांव बांध उनको नदी के जल में फेंक देने की आज्ञा दी। कबीर जल में नहीं डूबे और बहते बहते थोड़ी दूर जाकर फिर किनारे पर चले आये। तब शाही आज्ञा से बहुत बडे कुण्ड में आग जलायी गयी और सब लोगों के सामने कबीर उस में डाल दिये गये। परन्तु इससे उन के शरीर पर का एक केश तक नहीं जला। जलती हुई आग में से राम राम कहते हुए, वह निकल आये। इसके बाद, बादशाह ने उनको एक मस्त हाथी के पांवों से कुचलवाने की आज्ञा दी। हाथी उन को

देखते ही भाग गया। अन्त में सिकन्दर स्वयं हाथी की पीठ पर सवार होगया और महावत को कबीर के ऊपर चढ़ा देने की आज्ञा दी। हाथी के पास आते ही कबीर का शरीर बड़े भारी सिंह के स्वरूप में बदल गया। अब तो बादशाह भी डर गया और हाथी से उतर हाथ जोड़ कर कबीर से फिर मानवी शरीर धारण कर लेने को विनती करने लगा। कबीर ने जब फिर अपना असली रूप धर लिया तो सिकन्दर ने उन को बहुत सी जमीदारी देना चाहा। परन्तु साधु ने उसे न लेकर कहा "राम ही मेरे धन हैं। दुनियां के धन से मेरा क्या होगा ? इससे तो बाप बेटे में, भाई भाई में झगडा ही फैला करता है" इसके बाद वह अपने चौरा पर लौट आये और बे रोक टोक अपने धर्म का प्रचार करने लगे।

निदान कबीर दास अपना धर्म मत हिन्दी की कविता में लिखने और उन्हें अपने शिष्यों को सिखाने लगे। और प्रति-वर्ष दूर देशों में जा जा कर प्रचार भी करते रहे। अब उन के शिष्यों की संख्या बहुत बढ़गई थी। प्रधान चेलों में से एक को छोड़ सभी संसार त्यागी वैरागी थे। इन में से कोई कोई उनके जीवन काल ही में और कोई २ उन के शरीर छोड़े देने उपरांत महन्त पद पर प्रतिष्ठित किये गये थे। इन के नाम

यह है—(१) भागोदास। इन्होंने कबीरपन्थियों के प्रधान नीति-ग्रन्थ 'बीजक' का संकलन किया। (२) ब्रह्मगोपालदास। यह 'सुख-निदान' नामक ग्रन्थ के संकलन-कर्त्ता हैं। (३) धर्मदास। यह पहले रामानन्द के शिष्य थे, पीछे से कबीरपन्थी होगये। (४) चूड़ामणिदास। यह धर्मदास के पुत्र थे, इन के वंश वाले जब्बलपुर मठ के महन्त हैं। इन लोगों ने गृहस्थी नहीं छोड़ी, इस लिये ये वंश—गुरु कहलाते हैं। [५] वां कमाल। यह कवीरके पुत्र थे। इनकी बात पहले ही कही जा चुकी है। [६] अयोध्या के जगजीवनदास। [७] कटक के साहबदास। (८) नित्यानन्ददास। (९) कामानन्द। यह दाक्षिणात्य में प्रतिष्ठित हुए थे। इन लोगों के सिवाय और भी हजारों शिष्य थे। वे सब कवीर के धर्म के बीज-सूत्रों का अभ्यास कर साधारण लोगों को शिक्षा दिया करते थे।

आश्चय की बात है कि बहुत थोड़े ही समय में कबीर का धर्म पश्चिम में द्वारका से पूर्व में पुरुषोत्तम (जगन्नाथपुरी) और उत्तर में विहार से दक्षिण में मुम्बई तक फैल गया था। भारतवर्ष में जहां तक हिंदी भाषा बोली जाती है वहां तक इस धर्म का प्रचार हो गया था। यद्यपि यह बात निश्चित रूप

से नहीं कही जा सकती कि कबीर के जीवित काल ही में उन के धर्म ने इतना विस्तार पा लिया था, तब भी उनके परलोक वास के थोड़े ही काल पीछे ऐसा हो गया था, इस में कुछ भी सन्देह नहीं। क्योंकि द्वारका, मुम्बई, पुरुषोत्तम और बिहार के पहले महन्त लोग सभी इन के सहचर शिष्य थे। कबीर के समय में राह बाट ऐसी बुरी थीं और यात्रा करना ऐसा कठिन काम था कि इतने दूर २ जा कर धर्मप्रचार करने की बात सोच कर अचरज में डूब जाना पड़ता है। कबीर ने भारतवर्ष के बहुत स्थानों में जा जा कर यहां लिखे हुए दस मठों में से सब नहीं तो अधिकांशों को स्थापित किया था। (१) काशी का चौरा, (२) जगन्नाथ, (३) द्वारका, (४) धनावती, (५) जब्बलपुर, (६) मुम्बई, (७) बड़ौदा, (८) जौनपुर के जिले में मगहर और दाक्षिणात्य में और भी दो मठ।

कबीरपन्थियों के लगभग सभी ग्रन्थ कबीर के ही बनाये हुए कहे जाते हैं। और कुछ नहीं तो उन में से अधिकांश अवश्य इन्हीं के लिखे होंगे। ये पुस्तकें हिंदी के दोहे चौपाई छन्दों में लिखी हुई हैं।

इन के प्रधान ग्रन्थ का नाम "बीजक" है। इस ग्रंथ में कबीर-धर्म के मत और नियम विस्तार से लिखे हुए हैं। रमैनी

साखी, शब्द इत्यादि एक २ प्रकार के छन्द में एक २ छोटे२ अध्याय पाये जाते हैं। इस प्रकार छः सौः चौअन अध्याय ग्रन्थ में पाये जाते हैं। परन्तु अनेक पुस्तकों में कुछ पुरानी साखियों और शब्दों के बदले नयी २ रचनाएं भी देखी जाती हैं। बीजक की भाषा प्रायः बोल चाल की बिगड़ी हुई अपभाषा के बराबर है। रामायण-प्रणेता तुलसीदास आदि की नाईं विशुद्ध हिंदी और संस्कृत पढ़ने का अवसर न मिलने पर भी कबीर बहुत बुद्धिमान और चिंताशील कवि थे। उनके बनाये हुए सूत्र असली स्वतन्त्र चिंताओं और उपमा आदि अलंकारों के लिये प्रसिद्ध हैं। परन्तु रचना की शैली ऐसी कठिन, दुर्बोध्य और ग्राम्य दोषों से भरी हुई है कि बहुधा भाव संग्रह करना कठिन हो जाता है। इसी कारण से कबीरपन्थियों में बहुधा मतभेद और वादविवाद के द्वार खुल जाते हैं।

बीजक का छन्दोविन्यास बहुत ठौरों पर अभावमय जान पड़ता है। अनेक मनुष्यों ने बारम्बार इसे हाथ से लिखा, इस कारण ऐसे दोष आगये होंगे। विषय समूहों को उचित स्थान में रखने या किसी एक प्रणाली से लिखने की चेष्टा की गई थी, ऐसा नहीं जान पड़ता। अनियमित रूप में जहां तहां, माया का प्रपञ्च, जीवहिंसा का पाप, हिन्दू मुसलमानों के भ्रम और उनके धर्मानुष्ठान और उपदेशों की असारता

की बातें जहां जैसे मन में आया, लिखी गईं और उन की निन्दा की गई है। असल में अपने मतों की अच्छी तरह व्याख्या करने की चेष्टा किसी ठौर पर भी नहीं की गयी है, सो सभी बातें दुर्बोध्य रह गयी हैं। कबीरपन्थी लोग इस ग्रंथ का विशेष आदर और सम्मान करते हैं, हस्तलिखित सुन्दर जिल्द वाले बीजक ग्रन्थ इन में से पढ़े लिखे लोगों के पास बहुधा पाये जाते हैं। कोई २ इन पुस्तकों की पूजा करते और दूसरे धर्म वालों को इन्हें छूने नहीं देते। महन्त भक्त लोग सारा ग्रन्थ आदि से अन्त तक कंठ कर लेते हैं। सभी कबीर पन्थियों के मुख से साखी नाम के छोटे २ हिन्दी श्लोक सुने जाते हैं। बीजक में लगभग ३६० साखियां पायी जाती हैं। इस ग्रन्थ का कोई २ अंश छप भी गया है, पर कहा जाता है कि अभी तक सम्पूर्ण बीजक नहीं छपा है।

सुखनिदान—नामक ग्रंथ उस समय की स्पष्ट और जल्दी समझ में आने वाली भाषा में लिखा हुआ है। इस की सहायता से कबीरपन्थी दूसरी कठिन पुस्तकों के भाव समझ लेते हैं, जबलपुर के रहने वाले, धर्मदास नाम के, कबीर की पहली अवस्था के एक शिष्य और अनुगामी को सम्बोधन कर यह ग्रंथ लिखा गया था, परन्तु 'सुखनिदान' साधारण की प्यारी पुस्तक नहीं है। उच्चकोटि के महन्त और भक्त ही इसे पढ़ा करते है।

'रामानन्द की गोष्ठी' और 'गोरखनाथ की गोष्ठी' नाम के दो तर्क-ग्रंथ भी कबीरदास के लिखे हुए हैं। अपने गुरु रामानन्द और शैव सम्प्रदाय के विख्यात प्रतिष्ठाता गोरखनाथ के साथ कबीर का जो धर्म-विचार हुआ था, इन दोनों ग्रंथों में उसी का सविस्तार वर्णन है। चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में महात्मा मत्स्येन्द्रनाथ ने नैपाल में शैवधर्म चलाया था। गोरखनाथ उन्हीं के परम्परागत शिष्यों में से माने जाते हैं। इन ग्रंथों के सिवाय और भी कितनी ही साखियां भजन आदि की हस्तलिखित पुस्तकें देखने में आती हैं, इन की रचना कबीर के शिष्यों ने पीछे से की होगी। महन्त लोग बड़े यत्न से इन सब को पढ़ा करते हैं।

रामानन्द और गोरखनाथ दोनों कबीर के प्रतिद्वन्दी थे। रामानन्द कबीर के गुरु थे और हिन्दू-धर्म सम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञान उन को रामानन्द ही से मिला था। तब भी उन का धर्मसंस्कार स्वामी जी के धर्मसंस्कार से बिलकुल नहीं मिलता था, निदान जब कबीर ने एक नया सम्प्रदाय स्थापित कर दिया तो गुरु अप्रसन्न होकर कबीर को अपना प्रतिद्वन्दी समझने लगे। गोरखनाथ इस समय के प्रधान शैव-शिक्षक थे। अपने शिष्यों में वह शिव के अवतार माने जाते थे। इन महात्मा ने पंजाब से द्वारका तक अपना धर्म फैलाने की चेष्टा की थी। रामानन्द

और गोरखनाथ दोनों ने कबीर के प्रचारकार्य में विघ्न डालने की विशेष चेष्टा की थी। पर वे कुछ न कर सके, इन्हीं दोनों महात्माओं के साथ कबीर ने जो धर्म-विषय पर आलोचना की थी उसी की वार्त्ता बात चीत के ढंग से 'गोष्ठी' में लिखी गई है। गोष्ठी में उन दोनों के धर्ममतों की असारता और अपने मत की बड़ाई बड़ी चतुराई से बतायी गयी है। गोरखनाथ और रामानन्द का स्वर्गवास कबीर के सामने ही हो गया था।

सोलहवीं सदी के मध्य भाग में गोरखपुर जिले के पास मगहर में कबीर का भी परलोकवास हो गया। भक्तमालग्रंथ में लिखा है कि उन की मृत्यु के पीछे हिन्दू उन के शरीर को जलाना और मुसलमान गाड़ देना चाहते थे। इस बातपर बहुत झगड़ा होने लगा, तब कबीर की आत्मा ने सब के सामने प्रकट होकर शरीर जिस कपड़ेसे ढका हुआथा, उसे उठा लेनेको कहा। वस्त्र को उठाते ही सब लोगोंने देखा शव नहीं है, उस की जगह कुछ सुगन्ध फूल पड़े हैं। तब दोनों जाति वालों ने फूल बांट लिये, बिजलीखां पठान और उस के साथियों ने अपने भाग के फूलों को मगहर में समाहित कर दिया और राजा वीरसिंह के अधीन हिन्दुओं ने अपना भाग काशी लेजा कर वहां के कबीरचौरे में जला दिया। आज तक मगहर की

समाधि और काशी का चौरा कबीरपन्थियों के तीर्थ स्थान माने जाते हैं।

पहले कहा जा चुका है कि भारतवर्ष में कबीरदास ही ने सब से पहले पहल जाति, धर्म और देश का विचार न कर धनी, निर्धन, ज्ञानी, मूर्ख, सब तरह के मनुष्यों को धर्म की साधारण भूमि पर लाने की चेष्टा की थी। अपने जीते जी ही बड़े २ उच्च पद वाले सम्भ्रान्त मुसलमानों को उन्होंने अपना शिष्य बना लिया था, उनके बाद नानकशाह, जगजीवन, दादू आदि महानुभाव भी उन्हीं के समान धर्म का प्रचार कर गये हैं इन सब ने ही तन मन से हिन्दू मुसलमानों को एक ही धर्म में लाने का यत्न किया था, ये महात्मागण कबीर की शिक्षा का आशय लेकर शिक्षादान कर गये हैं और इन के ग्रन्थों में कबीर के कहे हुए उपदेश रख लिये गये हैं, अधर्म विषय में सहन शीलता और मनुष्यजाति में भ्रातृभाव का लाना कबीर-प्रचारित धर्मोपदेश की नींव के समान थे।

उनका उपदेश था कि——

सब से हिलिये, सब से मिलिये,
सब के लीजे नांव।
हां जी, हां जी करते रहिये,
बैठ आपने ठांव॥

भावार्थ—सब से मिलकर रहिये, अपने मनकी बात सहसा मत कहिये, हिन्दू मुसलमान जो जिस नाम से ईश्वर को पुकारे कुछ हानि नहीं। परस्पर प्रेम और भ्रातृभाव की शिक्षा देने के लिए कबीर ने बीजक की पहली रमैनी में लिखा है, तुम और हम दोनों एक ही रक्त से जन्मे हैं, और हम दोनों एक ही प्राण से प्राणित होरहे हैं, एक ही माता (माया) से पृथ्वी बनी है, वह कौनसा ज्ञान है जो हमको अलग कर देगा। दूसरी जगह उन्होंने कहा है सभी एक ही देश से आकर एक ही घाट पर उतरे हैं, परन्तु जगत् का भ्रम ऐसा भारी है कि इसने हम सब को अनगिनत सम्प्रदायों में विभक्त कर रक्खा है। दूसरी जगह बड़े करुण स्वर से बोल रहे हैं, "मैं तो जगत् के लिये रोया पर मेरे साथ कोई भी न रोया। जिसने शब्द समझा वही मेरे साथ रोवेगा।

कबीर एक परमात्मा को मानते थे। उन का ईश्वर गुणातीत नहीं, परन्तु आध्यात्मिक विग्रह और मन विशिष्ट है, उस में सत्व, रज, तम, तीन गुण वर्तमान हैं। बीजक की पहली रमैनी में उन्होंने ईश्वर को अन्तर्ज्योतिः और शब्द कहा है। सब के भीतर रहते हैं, मानकर शायद अन्तर कहा होगा। वह स्वयं प्रकाशमान हैं इसी से ज्योति, और उन का आभ्यन्तरिक स्वभाव उन्हीं के द्वारा प्रकट होता है, इस लिये कबीर ने उन

को शब्द कहा होगा। एक रमैनी में कहा है, उन का वर्ण और रूप कैसे बखानूं ? माया छोड़ और किसी ने उन को नहीं देखा। वह ओंकार नहीं हैं, वेद नहीं हैं, कैसे कहूं उन का वंश क्या है ? न वह तारा हैं, न सूर्य हैं, न चन्द्रमा हैं, उन का आदि पुरुष कोई नहीं है। वह जल नहीं, मिट्टी नहीं, अग्नि नहीं, वायु भी नहीं हैं। कौन उन का नाम कह, या वर्णन कर सकता है। उन के लिये रात दिन दोनों बराबर हैं कहो तो उन की जाति या वंश क्या है ?

कबीर ने और भी कहा है, "ईश्वर के आदि अन्त कुछ नहीं है। वह पवित्र, सर्व शक्तिमान, सर्वव्यापी सर्वज्ञ हैं। कबीरपन्थी साधु लोग पृथ्वी पर उन के अनुरूप, मर जाने पर उन के संगी और कुछ २ उन के समान होते हैं।" कबीर पन्थी लोग दूसरे वैष्णवों की नाईं मानते हैं कि ब्रह्म में लीन होने के पहले मनुष्य को क्रम से छः प्रकार के देह धरने पड़ते हैं। १—स्थूल देह, २—सूक्ष्म देह, ३--कारण देह ४--महाकारण देह, (कारण की सूक्ष्मावस्था)। ५. कैवल्य देह (जन्म परिग्रह से विनिर्मुक्त दिव्य शरीर) ६--हंस शरीर यानी ईश्वरस्थित सब बन्धनों से मुक्त आनंदमय देह।

कबीरदास ने बीजक के अनेक ठौरों पर लिखा है कि ईश्वर इस विश्व के कर्ता नहीं हैं। यह सब माया से पैदा हुवा

है। माया ब्रह्म से निकली है। संसार का कुछ भी सत्य नहीं अकेली भ्रांति-असार कल्पनामात्र है। माया ब्रह्मा, विष्णु और शिव की जननी और जामा है। बीजक के ठौर ठौर पर माया के अनेक प्रकार प्रपञ्चों की बात लिखी है, और कहा गया है कि माया ही जीव को परम गति मोक्षपद से दूर हटा कर संसार में बांध रखती है। पृथ्वी पर जितने प्रकार के पाप कुसंस्कार भ्रम और दुर्गतियां हैं, माया उन सब की जननी कही गई है।

कबीर हिंदू देवी देवताओं को नहीं मानते थे। उनके विरुद्ध बड़ी तीव्रता से लेखनी चला गये हैं। वह कहते हैं कि "सत्य साहब (परमेश्वर) की उपासना करो, वह तुमको सब परीक्षाओं से बचा लेंगे। वह दशरथ के वंश में मनुष्य होकर नहीं जन्मे, न उन्होंने लंका के राजा को मारा, यशोदा ने उन को गोद में नहीं खिलाया और वह कभी देवकी के गर्भ में नहीं बैठे। वह जगत् में युद्ध करते नहीं फिरे न वह बालि को नीचा दिखाने को पाताल ही में घुसे। वे बालि के साथ नहीं लड़े, न उन्होंने हिरण्य-कशिपु दैत्य ही को अपनी जांघ पर रख कर मारा, शूकर का जन्म भी उन्होंने नहीं लिया और न उन्होंने क्षत्रियों को ही मारा, न उन्होंने अपनी छोटी अंगुली पर गोवर्धन उठाया, न वह ग्वालबालों के साथ मथुरा वृन्दावन

के वन वन घूमे। वह शालिग्राम या किसी दूसरी जाति के पत्थर नहीं हैं। न वह जलचर कच्छ मच्छ ही हैं। वह द्वारिका में नही मरे, न उनका प्राणरहित शरीर ही जगन्नाथ में गाड़ा गया। कबीर कहते हैं कि कोई कभी ऐसे उपदेशों को न माने। जिनको साधारण मनुष्य स्थूल भौतिक देहधारी समझते हैं, वह अत्यन्त सूक्ष्म आत्माराम हैं।" दूसरी जगह लिखा है, "हे सन्तो! जो जन्म लेता या मरता है, वह माया से बना है। ईश्वर सब अभावों के मोचन करने वाले हैं। वह कहीं नहीं जाते, न कहीं से आते ही है। वह मत्स्य, बराह अवतार नहीं हुए, न उन्होंने कभी शंखासुर को मारा, वह करुणामय वैरभाव रहित हैं, कैसे वह किसी को मारेंगे? वह विधाता शूकर होकर नहीं जन्मे और उन्होंने धरणी या नदी (गंगा) को सर पर नहीं रखा। ये सब कार्य ईश्वर के नहीं हैं, भ्रांत जगत् मिथ्या कहता है। जगत् के मनुष्य समझते हैं कि उन्होंने स्फटिक का खंभा फाड़ नख से हिरण्य कशिपु की आंतें निकाल ली थीं। यह स्वभाव विधाता का कैसे हो सकता है? वामन रूप से उन्होंने बलि को नहीं छला। छल प्रपंच माया का काम है। सत्य का तत्व न जान लोग झूठी राह पर चलते हैं। माया उनको ठगा करती है परशुराम बन उन्होंने पृथ्वी को क्षत्रियशून्य नहीं किया, यह भी माया का काम है। जिनको

सद्गुरु का उपदेश नहीं मिला उनका जीवन वृथा है । जगत् पति ने सीता से विवाह नहीं किया, न सेतु बांधने के लिये मिट्टी पत्थर ही समुद्र में डाले । जो लोग इस तरह रघुनाथ का ध्यान करते हैं वे अंधे हैं वे गोकुल में गोप गोपियों के साथ नहीं रहे, न उन्होंनें अपने हाथ से राजा कंस को मारा वह बड़े करुणानिधान और सबके मालिक हैं । उनकी हारजीत कुछ नहीं होती । ऐसे विधाता को बुद्ध भी नहीं कह सकते और वह असुरों के मारने में भी नहीं लगता । अज्ञान मनुष्य ही ईश्वर के कार्य का इस तरह विचार करते हैं और माया उनको झूठे मार्ग में भटका देती है । ऐसे विचारों से चिन्ताशील मनुष्यों की हार हो गई है । ईश्वरके दस अवतार माया का कार्य है । विधाता की पूजा किसने की है ? कबीर का कथन है, सन्त लोग सुनें, जिसके जन्म मृत्यु है वह माया से जन्मा है । ”

कबीर ने मूर्तिपूजा की भी निन्दा की है । वह कहते हैं 'सन्तो ! दुनिया पागल होगई है । मैं सच कहता हूं तो दुनिया मुझको मार डालने को तैयार होजाती है, पर मिथ्या पर विश्वास करती है । मैं ने धर्माभिमानियों को देखा है । वे नित्य नियम से स्नान करते हैं । वे ईश्वर को छोड़ पत्थर पूजतेहैं । उनको कोई ज्ञान नहीं । उन्होंने पत्थर पीतल की पूजा

चलाई है और तीर्थ यात्रा के कल्पित पुण्य के अहंकार से फूल रहे हैं। वे माला और पगियां पहिरते हैं और नाक के ऊपर तिलक और बाहु पार छाप लगाते हैं और कल्पित देव देवियों के गुण गाते हैं। ये ही लोग ईश्वर को छोड़ देने वाले हैं।" कबीर के ग्रन्थों में लिखा है, " माला काठ है और देवता पत्थर है। गंगा यमुना जल छोड़ और कुछ नहीं। राम और कृष्ण की मृत्यु हो चुकी और चारों वेद झूठी कहानियां हैं।" और भी "पत्थर पूजने से मुक्ति मिल सके तो मैं पहाड़ पूजूंगा गेहूं पीसने की चक्की दूसरे पत्थरों से अच्छी होती है, क्योंकि इससे अन्न पीस कर मनुष्यों के भोजन का प्रबन्ध हो सकता है।"

हिन्दू मुसलमानों की उपासना की रीतिका भी उन्होंने उपहास किया है। पंडित लोग भ्रांति के कारण वेद पढ़ते हैं, जिनको साधारण बुद्धि भी नहीं वेही नियमित रूपसे सन्ध्या वन्दन और वृथा धर्म के अनुष्ठान करते हैं। चार युग गायत्री पढ़ता रहा पर मैं पूछता हूं किसको इससे मुक्ति मिली? दूसरे को छूकर उनको अशुचि होने का डर लगता है, पर उनसे बढ़कर अपवित्र दूसरा कौन है?" दूसरी जगह लिखा है, मैं ने हिंदू मुसलमानों के धर्म मत की परीक्षा कर ली है, वे लोग जिह्वा स्वाद के लिये व्रतादि का अनुष्ठान करते हैं। हिन्दू सिंघाड़ा और दूध के लालच से एकादशी का उपवास करते हैं, परन्तु

इन्द्रिय-लालसा के कारण मांस खाना नहीं छोड़ सकते। मुसलमान रोज़ा रखते हैं, नमाज़ पढ़ते हैं, और बड़े सवेरे मुर्गे की तरह विस्मिल् कह कर चिल्लाया करते हैं।"

पाप पुण्य और मुक्ति के विषय में उनका मत वैदान्तियों से मत मिलता है। उन का विश्वास है कि सब पाप ही असत्य है, उनका असली अस्तित्व ही नहीं, जब तक जीव माया के वशीभूत रहता है तब तक उसके ऊपर उसका प्रभाव ठहर सकता है। माया छूटने के साथ ही साथ मनुष्य को उसके हाथ से छुटकारा मिल जाता है। कबीर के मत से हिन्दू मुसलमान जिन स्वर्ग नरक को मानते हैं वे हैं ही नहीं। ब्रह्म में लीन होना ही असली मुक्ति कहा गया है।

कबीरकृत साखियां बड़ी मधुर और नीति तथा उच्च भावों से भरी हुई हैं। आज तक लगभग ऐसी ५००० साखियों का पता लग चुका है, परन्तु उसकी असली संख्या क्या है यह ठीक नहीं कहा जा सक्ता। कौन ऐसा हिंदी-भाषी होगा जो कबीर की साखियों में से दस पांच भी न जानता होगा।

दृष्टांत के लिये कुछ साखियां यहां पर दी जाती हैं, विस्तार भय से अधिक नहीं दी गईं।

नवद्वारे का पींजरा, तामें पंछी पौन ।
रहने को आचर्य है, गये अचम्भा कौन ॥

पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय ।
एकै अक्षर प्रेम का, पढ़ा सो पंडित होय ॥

चलन २ सब कोइ कहे, पहुंचा विरला कोय ।
एक कनक अरु कामिनी, दुस्तर घाटी दोय ॥

मनका फेरत युग गया, गया न मनका फेर ।
करका मनका छांड़ि के, मनका मनका फेर ॥

सांचे आंच न लागई, सांचे काल न खाय ।
साँचे को सांचा मिले, सांचे माहि समाय ॥

कलिका बाम्हन मसखरा, ताहि न दीजे दान ।
कुटुम सहित नरके चले, साथ लिये यजमान ॥

कबीरदास ने मानवी जीवन का जैसा मूल्य ठहराया है, नीचे की बातों से उसका पता चल जाता है । वह कहते हैं,– "इस जगत् में मनुष्य अपने जन्म सूत्रतक में सम्पूर्ण पापी और अपवित्र है । अपने शरीर का भाग लुटाने वाले प्रायः सभी

देख पड़ते हैं। माता पिता कहते हैं, यह मेरा बेटा है, हमने अपने स्वार्थ के लिये इन को पाला पोसा है।" स्त्री कहती है, 'यह मेरा पति है' और बाघिन की भांति उसे नोच खाने के लिए तैयार रहती है लड़के लड़कियां यमदूतों की तरह भोजन वस्त्र के लिए उसकी ओर टकीटकी बांध कर निहारा करते हैं। गृध्र कौए भी उस के मृत शरीर के श्मशान की ओर जाने की बाट देखा करते हैं। अग्नि कहता है, मैं उसे राख बना कर ही छोड़ूंगा। पृथ्वी कहती है मैं उसे ले लूंगी। वायु भी उसकी चिता में बची बचायी राख उड़ाने के लिये तत्पर रहती है। अरे मूर्ख! तूने इस देह को अनन्त काल के लिए अपना घर मान रखा है। क्या तुझ को देख नहीं पड़ता कि तेरे गले पर छुरी फेरने के लिये चारों ओर हजारों दुश्मन घूम रहे हैं? संसार की माया से मोहित होकर ऐसे शरीर को अपना समझता है? तेरी देह के लिये कितने लोग लालच कर रहे हैं! तुझे सारा जीवन बड़े कष्ट से बिताना पड़ेगा। अरे पागल! तू तनिक भी सोचे विचारे बिना 'मेरी देह' 'मेरी देह' कह कर चिल्ला रहा है!

मृत्यु के विषय में कबीर के मन का भाव इस दृष्टान्त से प्रकट होगा—प्यारा सारस (या हंस) ताल छोड़ देने की धुन में लगा है। जिस सरोवर से वह मोती चुनता था और जिसमें

उसने कैसे २ खेल खेले, अब वह सूख चला। जिस जल में कमल दल फूल रहे थे, वह सूख गया, कमल कुम्हला गये। कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य की आत्मा ! तुम अब चल दिये। फिर कब तुम से मेरी भेट होगी ?" और भी "हे मित्र ! अब अकेले क्यों जारहे हो ? उठ कर फिर एक बार अपने खेल कूद दिखाओ। गेहूं घी शक्कर से परिपुष्ट तुम्हारा यह शरीर अब मकान के बाहर क्यों पड़ा है ? जिस मस्तक पर सुन्दर पाग पहिरते थे, वही यतन की सामग्री आज कौओं का भोजन कैसे हो गया ? हड्डियां ईंधन और केश घास फूंस की तरह जल रहे हैं। आती बार अकेले आये थे, जा भी रहे हो अकेले ही। बीच में जिस घरके द्वार पर तुमने हाथी बांधा था, उस से तुम को क्या लाभ ? संसार की प्यास मिटते न मिटते तुम्हारे ऊपर कैसा वाघ झपट पड़ा ? कबीर कहते हैं, काल का डंडा जोर से मनुष्य के सिर पर टूट पड़ता है तब भी उसको चेत नहीं होता।"

कबीर की उपदेशावली उनकी मृत्यु के पहले ही बड़े आश्चर्य रूप से मनुष्यों का चित्त आकर्षण कर सकी थी। उनके धर्म में दीक्षित हजारों हिंदू मुसलमान उनके व्याख्यानों को सुन और ग्रन्थों को पढ कर देश भर में उनका यश फैलाने

लगे थे। इतने थोड़े समय में भारत के किसी धर्म-प्रवर्त्तक का मत इतने विस्तृत रूप से प्रचारित होते नहीं देखा गया। कबीर के धर्मावलम्बियों की संख्या बराबर बढ़ती ही आयी है। पिछली शताब्दि में बनारस के राजा चेतसिंह ने कबीरपन्थी उदासीनों को न्योता दिया था तब ३५००० मनुष्य बटुर गये थे। उनकी संख्या अब भी बढ़ रही है और आजकल भी युक्तप्रांत, मध्यप्रदेश, और बिहार के प्रत्येक ज़िले में हजारों कबीर पन्थी बैरागी और गृहस्थ पाये जाते हैं।

बाबा नानक

लाहौर ज़िले के तालवण्डी नाम के गांव में कालू और लालू दो भाई रहते थे। वे जाति के वेदी खत्री थे? कालू लालू से बड़े थे। ये लोग व्यापार करते थे। धनवान न होने पर भी अपने प्रान्त में वे सम्भ्रान्त और सज्जन माने जाते थे। कालू गांव के दलवाई या पटवारी थे। सम्वत् १५२६ या १४६६ ई० में इन्हींके घर इनकी स्त्री त्रिपता के गर्भ से बाबा नानक का आविर्भाव हुआ था। नानक की बहिनका नाम नानकी था। वह सुलतानपुर में रहने वाले जयराम नामी एक छोटे किसान या खेती से आजीविका पाने वाले मनुष्य से व्याही गई थी।

नानक की शिक्षा का सच्चा वृत्तान्त नहीं मिलता । परन्तु बाल्यावस्था ही से वह बहुत बुद्धिमान् और प्रतिभाशाली थे, और बहुत छोटी अवस्था ही में फ़ारसी भाषा और हिसाब किताब भी थोड़ा बहुत सीख सके थे, इस के प्रमाण पाये जाते हैं । जन्म-साक्षी ग्रन्थ में लिखा है कि क्रम से गोपाल पांधा* बैजनाथ पण्डित, और कुतबुद्दीन मुल्ला के पास उन को शिक्षा मिली थी युवावस्था के पहले ही से इनका मन सांसारिक व्यापारों से विरक्त सा जान पड़ता था । एक दिन गो चराने जा कर वह बड़ी देर तक बाहरी ज्ञान रहित हो कर गहरी ईश्वर चिंता में डूब गये । इसी अवसर में पशुओं ने पास वाले खेत का सारा अन्न खा लिया । खेत के मालिक ने यह बात देख नानक के पिता से बहुत झगड़ा किया ।

कहा जाता है कि एक दिन दो पहर के समय वह खुले मैदान में पड़ कर सो गये, तब एक बहुत बड़े सर्प ने अपना फण फैला कर उन के मुख पर छाया कर दी थी ।

यौवन प्राप्ति के साथ ही नानक के पिता ने उन को व्यापार के काम में लगाने के अभिप्राय से ४०) की पूंजी दे कर, बालाराम नामक एक जाट के साथ परदेश भेज दिया ।

*, पांधा = पाध्या = उपाध्याय ।

थोड़ी दूर चल कर नानक की कुछ साधु सन्यासियों के साथ भेंट हो गयी। उन लोगों के साथ परमार्थ विषय के अनेक प्रकार के वार्तालाप होंने पर नानक की आंखें खुल गयीं और उन को दृढ़ विश्वास हो गया कि सांसारिक झगड़ों में मनुष्य-जीवन की कुछ भी सार्थकता नहीं है। संसार का बन्धन तोड़ जो साधु रमते फिरते हैं, वे ही धन्य हैं। ऐसा विचार नानक ने साधु महात्माओं के सत् संग में कई दिन विता दिये और उनको खिलाने पिलाने में अपनी सारी पूंजी खर्च कर, रीते हाथ घर लौट आये। घर आकर उनको पिता के सामने जाने का साहस न हुआ और वह एक पेड़ पर चढ़ कर छिप रहे। पिता को जब मालूम हुआ, उन्होंने पेड़ के पास जाकर नानक को नीचे उतर आने को कहा और पूछा "रुपये क्या किये"? सीधे साधे नानक बोले, "पिता जी! आप ने कहा था कि जिस व्यापार में सब से ज्यादा लाभ देख पड़े, उसी में रुपया लगा देना। सो मेरी समझ में इस लोक में साधुओं की सेवा से जो पुण्य होता है उससे बढ़कर मुनाफा किसी दूसरे व्यापार से नहीं हो सकता। इस लिए मैंने रुपये साधु-सेवा में ही लगा दिये हैं। पुण्यात्मा सज्जनों के हाथ रुपये स्वर्ग को भेज दिये, वहां वह हम को व्याज के साथ लौटा मिलेंगे।

नानक के पिता को क्रोध चढ़ आया। वह उन्हें धमकाने और मारने लगे तो गांव के मालिक बूलरराय ने उनको रोक कर कहा कि नानक ने जो रुपये बिगाड़ डाले हैं उन को मैं देता हूं, आप इसे मत मारिये। जमीदार नानक के चरित्र और धर्मज्ञान से बहुत अचरज मानने लगे और समझ गये कि वह बड़े होकर बड़े भारी भक्त और महात्मा होंगे। निदान कालू ने जान लिया कि नानक से कोई व्यापार नहीं हो सकेगा। ऐसा समझ, उनको सुलतानपुर में अपनी बेटी नानकी के पास भेज दिया। बहनोई जयराम की चेष्टा से नवाब दौलतखां लोदी के आधीन नानक को एक नौकरी मिल गई। नवाब साहब के अपने घर और सेना के लिए जो अन्न लगता उसको लाने और बांटने का काम नानक को सौंपा गया। इस नौकरी के वेतन में उन को बहुत रुपया मिलता पर वह एक पैसा भी नही बचा सकते थे। अन्तिम कौड़ी तक साधु, फ़कीरों और अतिथि अभ्यागतों की सेवा में ख़र्च कर डालते थे। इतना ही नहीं, विना आज्ञा के ही नवाब साहब के ख़जाने का भी बहुत सा धन लगा देते थे, इस लिये नवाब के पास उनके नाम से नालिश भी हुई थी।

जब नानक इस भांति नौकरी कर रहे थे, गुरुदासपुर जिले के वठल परगना वाले लिखिको नामी गांव में रहने वाले

मौला चौना नामक एक खत्री की सुलखना नाम की कन्या के साथ नानक का व्याह हो गया। चौनावंश में जन्म होने के कारण लोग उस कन्या को 'चौनी' भी कहते थे। समय पा कर इस स्त्री के गर्भ से श्रीचन्द्र और लक्ष्मीदास नाम के दो पुत्रोंका जन्म हुआ। ये दोनों आगे चलकर उदासी सम्प्रदायके प्रतिष्ठाता होने के कारण विख्यात हो गये हैं। पंजाब में अब भी इनके बहुत से अखाड़े या मठ पाये जाते हैं। कहा जाता है कि नानक के धर्म-प्रचार के कार्य में लग जाने के उपरान्त वह अपने पुत्रों को धर्मोपदेश देने का काम नहीं सौंपना चाहते थे। इसलिए जब वह प्रचारयात्रा को निकलते, पुत्रों को बहुधा साथ नहीं लेते थे। ऐसा भी सुना जाता है कि पहले वह विवाह करना नहीं चाहते थे; पर बहिन बहनोई के कहने सुनने पर राज़ी हो गये थे। धर्मोपदेश देने का भार नानक ने अपने प्रिय शिष्यों पर सौंप दिया था।

श्रीचन्द और लक्ष्मीदास के जन्म लेने के थोड़े ही काल पीछे नानक का मन गृहस्थी से विचलित होने लगा। इसलोक की सामग्री, धन, प्रतिष्ठा, शक्ति सामर्थ्य, और जीवनकी तुच्छता और नश्वरता के भावों ने उनके चित्त पर एक साथ अधिकार कर लिया। ईश्वर का ध्यान, भजन और महात्माओं का सत्संग छोड़ और कुछ भी उन को अच्छा न लगता। सुलतान-

पुर में रहते समय एक दिन 'वाउ' नाम की नदी में स्नान करने जाकर दिनभर जल में खड़े हो कर ध्यान मग्नदशा में बिता दिया था। नदी के जिस घाट पर वह नित्य नहाते थे, आजकल उसका नाम शान्तिघाट है, और स्नान के उपरांत जिस जिस वृक्ष के नीचे बैठकर वह ध्यान धारण और ईश्वर चिन्तन करते थे, वह कबीरवर या कबीरवट के नाम से प्रसिद्ध है।

निदान नानक गृहस्थी छोड़ उदासीन होगये। नातेदार और मित्र लोग उनको फिर गृहस्थी में लाने के लिये बहुत यत्न करने लगे, पर नानक का मन अटल बना रहा। ईश्वर प्रेम में डूबजाने वाले प्रेमी का मन फिर कब संसार की माया में फसता है? नानक के ससुर ने उम को घर लौटाने के लिये दौलतखां का आज्ञापत्र तक भिजवाया। पर वह इतने पर भी न लौटे। उन्होंने उत्तर लिखा भेजा कि वह ईश्वर को छोड़ कर और किसी के सेवक नहीं हैं। अपनी बहिन से विदा हो, उदासीनों के वेश में नानक देशाटन करने लगे। उनकी सहधर्मिणी छोटे बेटे लक्ष्मीदास के साथ पिता के घर चली गयी। बड़ा बेटा श्रीचन्द अपनी बूआ नानकी के पास रह गया।

गुरु नानक के साथ बाला और मर्दाना नाम के दो मनुष्य घूमा करते थे। यह बाला उन का पुराना साथी बालादास जाट

था। और मर्दाना बहाबी सम्प्रदाय का मुसलमान था। मर्दाना खंजरी या रवाब बजाता और नानक भजन गाया करते। इस समय नानक ईश्वर के ध्यान में डूब नेत्र मूंद संसार को सूना समझ बहुत समय तक इस तरह योगानन्द में डूब जाते कि मर्दाना को बहुधा भूखा प्यासा रह जाना पड़ता।

विचार कर देखने से ऐसा जान पड़ता है कि हिंदू मुसलमानों को मिला कर धर्म की एक साधारण भूमि में ले आना नानक बाबा का मुख्य उद्देश्य था। इस काम में उनको विशेष सफलता मिली, ऐसा नहीं कहा जा सकता, परन्तु उनके महान् उद्यम का फल-स्वरूप वैष्णव धर्म के एक नये सम्प्रदाय की सृष्टि होगई। इनके धर्म मत का सार मर्म यही है कि ईश्वर एक, निराकार, निर्लिप्त और नित्य है। वही सब जीवोंके सिरजन हारे और रखवारे हैं और उन्हीं में ये सब अन्त में मुक्ति पावेंगे। जाति और वर्ण का कुछ अर्थ नहीं और जितने भिन्न भिन्न प्रकार के मत और मार्ग देखे जाते हैं सभी भ्रम-पूर्ण और कल्पना मात्र से जन्मे हुए हैं। नानक पन्थियोंकी उपासना का प्रधान अंग है जप। आदि ग्रन्थ में इस मन्त्र के जपने का आदेश है—"ओं सत्य नाम,, कर्त्तापुरुष, निर्भय, निर्वैर, अकालमूर्ति अयोनिसम्भव, गुरुप्रसाद"। ब्राह्मणों की गायत्री के समान सिख मात्र ही नित्य इस मंत्रको जपा करते हैं बहुत लोग

तब शिष्यों ने गुरु के उपदेशों को बटोर कर "आदि-ग्रंथ" का नाम देकर उन सब को लिख डाला। इसके सौ वर्ष पीछे गुरु गोविन्दसिंहने सिख धर्मका एक दूसरा ग्रंथ बनाया था।

गुरु नानक का जीवन वृत्तान्त गुरुसाखी नाम के ग्रंथ में विस्तार सहित लिखा गयाहै। परन्तु उसके वह आदिसे अन्त तक अलौकिक घटनाओं से भरा हुआ है।

इसके बाद नानकका नाम देशभरमें प्रसिद्ध होगया। मुसलमान उनको नानकशाह कहते और हिन्दू गुरु नानक, बाबा नानक, नानक निरंकारी कह कर उनका यश गाया करते हैं। जिस मनुष्य ने धनहीन के घर जन्म पाकर अपने धर्म जीवन और प्रतिभा के बल से ऐसा महत्व प्राप्त किया, उनकी प्रशंसा का कह सुनकर अन्त नहीं हो सकता। उनकी कार्यावली की आलोचना कर श्रद्धा भक्ति और विस्मय में गोता लगाये विना किसी से नहीं रहा जाता। दन्तकथा सुनी जाती है कि जिस समय नानकका जन्म हुआ था, सूतिकागृह की धात्री ने सुना था कि शून्यमार्ग में बहुत से लोग एक साथ चिल्ला कर कह रहेहैं, "आज एक महा पुरुष ने जन्म लिया है।" नानक के जन्म स्थान पर आजकल एक मंदिर बना हुआ है, लोग उसे "नानकाना" कहते हैं। जिस जगह नानक के मुख पर सर्प ने छायादान किया था, उसे आजकल "कैस साहब" कहते हैं।

नानक को कबीर दास का अनुगामी समझते हैं और उनके सम्प्रदाय को कबीरपंथियों की एक शाखा मात्र समझते हैं। नानक पंथी उनको देवता का अवतार समझते हैं और पंजाब प्रान्त में उनका प्रभाव आज तक अटूट बना हुआ है। उनके शिष्य लोग सिख कहलाए। सिख जाति गुरु नानक ही के धर्म को मानती है। पर कोई भी कुछ कहे, गुरु नानक का जीवन चरित्र पढ़ कर मान लेना पड़ता है कि वह बहुत ही महानुभाव और उच्च श्रेणी के प्रतिभाशाली उदासी धर्म प्रचारक थे।

गुरु नानक ने अनेक तीर्थों में जा जाकर और अनेकानेक नर नारियों के मन में अपना धर्म मत जमा कर संवत १५९६ या १५३९ ई० में परलोक की यात्रा की इनके शिष्यों में हिन्दू मुसलमान दोनों जाति के लोग थे। कबीरदास की भांति इनके मृत शरीर को भी कुछ लोग जलाना और कुछ गाड़ देना चाहते थे। इसी बात पर हिन्दू मुसलमान शिष्योंमें बड़ा झगड़ा होने लगा, परन्तु आश्चर्य की बात है कि झगड़े के बाद जब देखा गया तो मृत शरीर कहीं चला गया था या तो किसी ने उसे चुरा लिया, या किसी अलौकिक नियमानुसार वह शून्य में मिल गया होगा। निदान जिस कफ़न से शरीर ढका था, उसी को आधोआध फाड़ कर हिन्दुओं ने एक भाग यथारीति जला दिया, मुसलमानों ने दूसरे भाग को गाड़ दिया।

बंगाल--बिहार के नानक-पन्थियों में एक आख्यायिका प्रचलित है। पहिले कहा जा चुका है कि सुलतानपुर में नानक दौलतखां लोदी के पास अन्न बांटने का काम करते थे। एक दिन वह गेहूं तोल रहे थे—'एके राम, एके राम, एके राम; दोए राम, दोए राम, दोए राम,—'इस भांति तोलते २ जब तेरह बार तोल चुके तो गेहूं घट गया। नानक ने नौकर बालाराम से और गेहूं भंडार से लाने कहा। परन्तु भूल न जावें इस लिये स्वयं बोलते रहे—"तेरा राम, तेरा राम, तेरा राम।" तेरा से मतलब तेरह का निकलता है। दूसरे पक्ष में तेरा या तुम्हारा भी समझा जा सकता है। बार २ कहते २ नानक को ज्ञान उमड़ आया। वह सोचने लगे "मैं बार २ तेरा राम, तेरा राम कह रहा हूं, पर असल में मैं राम का नहीं, संसार ही का बना हुआ हूं।" तब उन का अन्तःकरण राम-प्रेम से भर गया, उनसे और वहां न ठहरा गया, वह उठकर वहां से चले गये।

एक दिन नवाब दौलतख़ां मुसलमानों के साथ नानक को मसजिद में उपासना के लिये ले गये। सब लोग घुटने टेक धरती पर सिर लगा कर प्रणाम करने लगे। नानक चुप चाप खड़े रहे। यह बात नवाब को अच्छी न लगी। नवाब ने पूछा "साह जी सब लोग सिज़दा कर रहे हैं, तुम क्यों खड़े हो?" नानक

बोले, "नवाब साहब ! आप मन में क़न्दहारी घोड़े की बात सोच रहे हैं और काजी साहब अपनी बेटी की बीमारी की फिक्र में लगे हैं। कहिये तो, आप लोग भगवान के पास कैसी प्रार्थना कर रहे हैं?" नवाब और क़ाज़ी दोनों को इस बातको सुन बड़ा अचम्भा हुआ, पर दोनों ने मान लिया कि नानक ने सच कहा है।

जिस समय बाबरशाह ने हिंदुस्तान पर चढ़ाई की, बहुतेरे दीनदुखिये बेगार पकड़े जाते थे। उन्हीं में नानक भी एक बार पकड़ लिये गये। अनेक प्रकार की बात चीत के बाद नानक ने बादशाह से कहा, "आप के घराने में सातवीं पीढ़ी तक गद्दी रहेगी।" यह भविष्य-वाणी सच निकली। हुमायूं से सातवीं पीढ़ी के बाद दूसरे कुल के फर्रूखसियर को शाही गद्दी हाथ लगी थी।

नानक में एक दोष यही मिलता है कि अपने मत का बहुत अधिक पक्षपात करने के कारण वह ब्राह्मण और मुसलमानों के धर्म से कुछ घृणा रखते थे। परन्तु अनेक तीर्थों की यात्रा भी वह कर आये थे। किसी समय मक्का तक पहुंच गये थे। एक दिन मक्का नगर में मसजिद की ओर पांव पसार कर वह सो रहे थे, इतने में किसी ने आकर उनकी निन्दा करके कहा,

" आपको ऐसा न करना चाहिए । ' नानक ने उत्तर दिया, " मूर्ख ! ईश्वर सर्व व्यापी । जिधर पांव पसारो वह उधर ही होंगे तब कहो क्या किया जावे ? '

नानक ने भी अनेक लावनी और भजनों की रचना की है । वह इन को गा गा कर घूमा करते थे । ये सब संगीत बहुत ही मधुर और उच्चभावों से भरे हुए हैं और इनकी संख्या बे ठिकाने है । उदाहरण की भांति दो एक भजन यहां पर उदधृत किये जाते हैं ।

राग धनासरी

काहे रे वन खोजन जाई ।

सरव निवासी सदा अलेपा तेही संग समाई ॥१॥
पुहुप मध्य जिहु बास बसतु है, मुकुर मांहि जस छाई ।
तैसे ही हरि बसै निरन्तर; घट ही खोजहु भाई ॥२॥
वाहर भीतर एकहि जानहु, यह गुरु ज्ञान बताई ।
जन नानक ! बिन आपे चीन्हे मिटे न भ्रम की काई ॥३॥

राग गौड़ी

साधो ! मनका मान त्यागो ।

काम क्रोध संगति दुर्जन की, ताते अहनिश भागो ॥१॥

सुख दुःख दोनों सम कर जाने,
और मान अपमाना ।
हरख सोक ते रहै अतीता,
तिन जग तत्व पछाना ॥ २ ॥
अस्तुति निन्दा दोऊ त्यागे,
खोजै पद निर्वाणा ।
जन नानक यह ! यह खेल कठिन है,
किनहु न गुरु मुख जाना ॥ ३॥

विश्व ब्रह्माण्ड के अधीश्वर परब्रह्म की आरती बताने वाला बाबा नानक का एक संगीत नीचे दिया जाता है । यह गुरुमुखी बोली में रचित है । इस के शब्द विन्यास का लालित्य, इसकी स्वाभाविक ओजस्विता और कविता की माधुरी सब लोगों के हृदय को मत्त कर देती है ।

राग धनाछ्री

गगन मैं थालु, रविचन्द दीपक बनैं,
तारका मंडला जनक मोती ।
धूप मलियानिलो, पवन चौंरो करि,
सकल वनराई फुलन्त ज्योती ।
कैसी आरती होय भव-खण्डना तेरी,

आरति, अनहदा शबद बाजन्त भेरी ॥
सहस तव नैन, नन नैन हहिं,
तोहिकउ सहस मूरति नना एक तोही ।
सब पद निमल नन एक पद गन्ध,
विनु सहस तव गन्ध इव चलत मोही ॥
सहस महि जोति जोत है सोई,
तिस दे चानन सब महि चानन होई ।
गुरु साखी जोत प्रगट होई,
जो तिस भावै सो आरति होई ॥
हरि-चरण-कमल-मकरन्द-लोभित मनो,
अनदिनो मोहि याहि पियासा ।
किरपा जल देहु नानक सारङ्गकउ,
होइ जाते तेरइ नाउ वासा ॥

अर्थ

गगन रूप थाल में चन्द्र सूर्य दीपक हैं । मलय समीर धूप जान पड़ता है और पवन चामर डुला रहा है। वन समूह खिले हुए फूल दे रहे हैं । हे भव खण्डन ! तुम्हारी कैसी आरती हो रही है ! अनाहत शब्द समूह भेरी बजा रहे हैं ।

तुम्हारे सहस्र नयन हैं और और एक भी नयन नहीं है। सहस्र चरण हैं और तुम चरण हीन हो सहस्र २ गन्धों से तुम सुगन्धित हो, पर तुम निर्गन्ध हो। सब के बीच जो ज्योति है, वही उन की ज्योति है। जो प्रकाश सब का है वही उन का प्रकाश है। गुरु के दर्शन मिलने पर यह ज्योति प्रकाशित होती है। जब कोइ भक्त इस भांति सोचता है, तभी उन की आरती होती है। हरि-चरण- कमल-मकरन्द- लुब्ध मेरा मन है। मैं रात दिन उसी के लिये प्यासा हूं। नानक-चातक को कृपा जल दो, जिस से तुम्हारे नाम के भीतर मेरा वास हो।

इस भांति के भजन और साखी पंजाब, युक्त प्रांत, मध्य-भारत और विहार में सब जगह बड़ी शुद्ध भक्ति के साथ गाए जाते हैं और वहां के उदासी गृही सब सुनने वालों को आज तक प्रेमानंद के उच्छ्वास से मुग्ध कर देते हैं।

आज कल पंजाब के अधिकांश मनुष्य ही बाबा नानक के प्रचारित धर्म में दीक्षित पाये जाते हैं।

गोसाईं तुलसीदास

हिन्दी भाषा भाषियों में कौन ऐसा मनुष्य होगा जिस ने गोस्वामी तुलसीदास जी का नाम न सुना होगा। हिंदी जगत

के बाहर भी इन भक्त चूड़ामणि राम रसिक का नाम बड़े भक्ति भाव से लिया जाता है । ग्रियर्सन साहब जैसे प्रतिष्ठित अंगरेज का कथन है कि इंगलैंड में बाइबिल का इतना प्रचार नहीं है जितना भारत वर्ष में तुलसीदास रचित रामायण का जनसाधारण में प्रचार है । इसी एक बात से तुलसीदास जी के सर्व प्रिय और सर्व मान्य होने का प्रमाण मिल जाता है ।

तुलसीदास संयुक्त प्रांत के हरिभक्त साधु सम्प्रदाय में एक प्रधान पुरुष थे । इन की कवित्व शक्ति बहुत उच्च श्रेणी की थी । हिंदी भाषा में तुलसीदास की सुललित कवितावली आजतक अतुलनीय बनी हुई है । संस्कृत छोड़ और किसी भी भाषा में ऐसी प्यारी कोमल कविता किसी से आज तक नहीं बनी है । जिन सब संस्कृतज्ञ पंडितों ने इन के अनुपम रामायण ग्रन्थ को पढ़ा है वे मुक्त कण्ठ से मान लेते हैं कि तुलसी की उपमा अ-लङ्कारों की छटा कालीदास की उपमा आदि से किसी अंश में कम नहीं हैं । और वैष्णव कवियों के काव्यों में गंभीर भावात्मक जो सब अनमोल प्रेम रासादि के उच्छ्वास पाये जाते हैं । भक्त कवि तुलसीदास की प्रत्येक पंक्ति में उस की अधिकाई देख कर पढ़ने वाले का मन उमंग से मतवाला सा बन जाता है । हिंदी जगत् में तो बालक युवा जरठ नर नारी सभी के पास तुलसीदास

का नाम परिचित और प्रातःस्मरणीय हो गया है। दुःख की बात है कि ऐसे श्रेष्ठ भगवद्भक्त कवि का यथारीति जीवनचरित नहीं मिलता। भक्तमाल और दूसरे अलौकिक आख्यायिकाओं से भरे हुए प्राचीन ग्रन्थों में और दंतकथा आदि से जहां तक संग्रह हो सकता है, उसी पर निर्भर करके उन का सारांश लेकर निंबध लिखना पड़ता है।

तुलसीदास के जन्म स्थान तक का ठीक ठीक पता नहीं चलता। बहुधा लोग चित्रकूट के पास यमुना तट पर राजापुर नामक ग्राम ही को उन का जन्म स्थान मानते हैं। परन्तु दूसरे लोग अन्तरवेद के भीतर सोरों के पास तरी नाम के ग्राम में शुक्ल उपाधि धारी एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण के घर तुलसीदास का जन्म मानते हैं। कोई २ उनको सरयूपारी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न बताते हैं जन्म काल ही में उनके पिता ने उनको त्याग दिया था। एक साधु ने उनको पाल पोस कर शिक्षा दी थी। किसी २ के मत में उनकी बहुत थोड़ी सी अवस्था में उनके पिता का शरीर छुट गया था। और कुछ बड़े हो जाने पर कुछ काल के लिये वह काशीराज के मन्त्री होकर काशी में रहे। परन्तु अधिकांश लोग उनको साधु के ही घर प्रति पालित मानते हैं। युवा बस्था में एक सुन्दरी रमणी का पाणिग्रहण

कर कुछ दिन के लिये वह सांसारिक भोगविलास आदि में भी डूब गये थे। इसी समय उनके एक पुत्र भी हो गया था। तुलसीदास अपनी सहधर्मिणी को बहुत चाहते थे। एक दिन भी उनसे अलग रहना उनके लिये कठिन हो जाता था। अन्त में यही स्त्री परोक्षरूप में गोसाईं जी के वैराग्य का कारण बनी थी।

गृहिणी एक दिन पति से बिना पूछे अपने पिता के घर चलीगई तुलसीदास ने घर लौटकर ये देखा कि घर सूना पड़ा है। इस बात से वह बहुत व्याकुल होकर इधर उधर खोजने लगे। जब सुना कि वह नैहर चली गयी हैं तो वह प्रणयिनी के विरह का दुःख न सह सके और आप भी झटपट ससुराल जा पहुंचे। परन्तु पत्नी ने जब उनको अपने पीछे २ आते देखा तो पहले भारत की कुल नारियों के स्वभाव अनुसार लाज से वह घबरा उठीं। निदान पति को अकेले में पाकर बोली "एक दिन भी स्त्री को छोड़ कर तुमसे रहा नहीं जाता मेरा पल्ला पकड़े हुए पीछे २ ही आपहुंचे। छिः ? यह कैसी लज्जा की बात हो गयी ?" इस सम्बन्ध में नीचे के दोहे प्रसिद्ध हैं। पत्नी ने कहा:—

लाज न लागत आपु को दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहों मैं नाथ॥

अस्थि चर्म मय देह मम, तासौं जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महं, होत न तौ भवभीति॥

स्त्री के मुख से इन बातों को सुनते ही तुलसिदास की आंखे खुल गयीं। तत्व ज्ञान की आग बड़े बेग से हहा कर जल उठी। "तुमने ठीक कहा" सहधर्मिणी से इतना ही कह कर वह वहां से चल खड़े हुए। पति का रङ्ग ढङ्ग देख पतिव्रता स्त्री को मालूम हो गया कि पति गृहस्थी छोड़ कर जा रहे हैं। बेचारी क्या करती, वह भी पति के पीछे २ दौड़ी और कहने लगी, "लौट चलो ; "लौट चलो! मैंने अनुचित कहा। मुझे क्षमा करो। आओ, दोनों फिर घर लौट चलें।" परन्तु तुलसी के चित्त रूपी आकाश मैं जो आंधी आ गयी थी, अबला कामिनी के सांत्वना रूपी पंखे के कोमल बयार से उसका क्या हो सकता था? हृदय में ब्रह्मज्ञान उमड़ आया था, स्त्री की विषय सुख बताने वाली लुभावनी बातों से उनका क्या हो सकता था?

निदान, तुलसिदास गृहस्थी, धन, स्त्री, पुत्र सब तज भक्त वत्सल, सर्वगुणाभिराम श्री रामचन्द्र का ध्यान करते २ अयोध्या जा पहुंचे। वहां के नियमानुसार वह पहले दिन उपवासी रह कर राम लक्ष्मण आदि देव मूर्तियों का दर्शन करते फिरे।

दिन भर बिना खाये पीयें और गाढ़ी भक्ति से बिवेक की बातों को सोचते २ रात को वह सो गये। नींद में आकर स्वप्न देखा उनके पिता सामने आकर कह रहे हैं, "बेटा! सर्व दुःख-हारी भवसागर में पार लगाने वाले ब्रह्मरूपी श्री रामचन्द्र का नाम साधन करो।" सवेरे उठकर तुलसिदास सरयू में स्नान कर आयें और एकाग्र मन से बैठ नेत्र बन्द निरन्तर राम नाम जपने लगे। उस समय किसी अपरिचित वैष्वण ने आकर एक तुलसी की माला उनको दी और उसकी सहायता से जप करने का उपदेश दिया। कुछ दिन अयोध्या में रह कर तुलसीदास फिर काशी लौट आये।

काशी के पास असी तट पर बालार्क-कुण्ड नाम में एक कुण्ड है। उसी के पास तुलसीदासजी का आश्रम अबतक देख पड़ता है। उसी जगह गंगातट पर एक मठ भी है मठ के भीतर हनूमान जी की मूर्ति और तुलसिदास के भजन साधन के चिन्ह अब तक बने हुए हैं। गंगा का यह घाट तुलसीघाट के नाम से प्रसिद्ध है। तुलसीदास इसी ठौर पर रहते थे। बिना मांगे जो कुछ मिल जाता उसी से जीने का सहारा मिलता और बाल्मीक रामायण का पाठ और राम चरित्र की आलोचना में दिन बिताया करते। तुलसी दास के ग्रन्थों को

पढ़ने से भली भांति जान पड़ता है कि वह बहुत अच्छे पंडित थे। प्राचीन काल की विद्या लोचना के प्रधान स्थान काशी में सज्जनों के संग रहकर भगवान् की कृपा से संस्कृत प्राकृत और हिन्दी में कविता रचने की शक्ति उनको भली भांति आगई थी।

पहले कहा जा चुका है कि भगवत् भजन और रामायण पाठ ही से तुलसीदास का समय बीतता था। एक दिन रात को उन्होंने स्वप्न में देखा कि श्याम मूर्त्ति दशरथ नन्दन रामचन्द्र उनके सामने खड़े होकर आज्ञा दे रहे हैं। " तुम हिन्दी भाषा में रामायण लिखो "। तब से भगवान् की आज्ञा समझ तुलसीदास रामायण लिखने लगे। यही रामायण तुलसीदास का प्रधान स्मृति चिन्ह है। कहा जाता है कि ईसवी सन् १६३१ में तुलसीदास ने इस अनुपम ग्रन्थकी रचना आरम्भ की थी। इसका नाम राम चरित मानस रखा। इस ग्रन्थ के सिवाय उन्हों ने राम गुणावली, गीतावली, दोहावली, कवित्त रामायण, वरवे रामायण, विनय पत्रिका, चन्द्रावली, सतसई, इत्यादि कई ग्रन्थ बनाये हैं। तुलसीदास को बहुत से लोग वाल्मीक का अवतार मानते हैं। उनकी सम्मति में कलियुग में ब्राह्मण लोग बहुधा संस्कृत भाषा नहीं जानेंगे। इन लोगों का और स्त्री और शूद्रों का भी राम चरित्र पाठ से परित्राण होसके इसी अभिप्राय

से संसार का हित करने की इच्छा से वाल्मीक ने तुलसी विप्र के रूप में अवतार लेकर भाषा रामायण बनाया है।

तुलसीदास की जीवनी में अनेक अद्भुत और हित गर्भ आख्यायिकाएं मिलती हैं। इन सब में यद्यपि बहुत सी अलौकिक और असम्भव बातें हैं। तब भी उनका सार ले लेने से बहुत कुछ उपदेश मिल सकते हैं। उन में से दो चार का संक्षिप्त वर्णन करना अनुचित न होगा।

गौसांईजी का एक नियम था कि वह कभी काशी क्षेत्र के भीतर मलमूत्र नहीं त्यागते थे। इस लिए उनको नित्य असीपार दक्षिण दिशा में बहुत दूर जाना पड़ता था। लौटतीबार शौचान्त लोटे में जो जल बच जाता था। उसे अपवित्र जान काशी में न लाकर वह नदी पार ही किसी आम के पेड़ की जड़ में डाल दिया करते थे। अपने किये हुए कर्म का फल भोगते हुए उस पेड़ पर एक पिशाच रहता था। एक दिन वह गौसाईंजी के सामने प्रकट होकर बड़ी विनती से बोला। "हे ब्राह्मण! आपने मुझको बहुत जल पिलाया है। इस लिए मैं आपसे बहुत प्रसन्न हूं। आप मुझसे कुछ वर मांगिये।" तुलसीदास पिशाच को देखकर डरे नहीं। उन्होंने पूछा "आप कौन हैं? और किस लिए यहां रहते हैं?" प्रेत बोला, " मैं पूर्वजन्म में

विन्ध्याचल के पास किसी गांव में एक ब्राह्मण था। वहां का राजा मेरा यजमान था। इस लिए वहां मेरा अच्छा मान था। परन्तु बहुत लोभी होने के कारण राजा पुण्यार्थ जो कुछ दान देते, वह सब मैं अपने घर ले आता। किसी दूसरे ब्राह्मण या दीन दुखिए को उस में से कुछ भी नहीं देता। इस लिए साधु सन्तों से मेरा सदा विरोध हो जाता और मैं राजा से झूंठ मूंठ उन महात्माओं के नाम निन्दा किया करता। मेरे अपने नाते दार मेरी चालबाजी से राजा के पास से बहुत दान पाया करते। मेरा जीवन कपटाचार से भरा था। मैं भरसक कभी किसी का कुछ भी उपकार न करता। दैवाधीन एक दिन एक दुखी ब्राह्मण प्यासा होकर मेरे पास आया। मैंने उसे जल पिला दिया था। मनुष्य का चोला पाकर शायद यही एक काम मैंने अच्छा किया होगा। उसी के पुण्य फल से आप मुझे नित्य जल पिलाया करते हैं"।

गोस्वामी ने फिर पूछा "आप विन्ध्याचल वासी थे, यहां कैसे आये?" पिशाच बोला, "एक वार हमारे राजा काशी आये। मैं भी उनके संग आया। इस पेड़ के नीचे आते ही एक सर्प ने मुझको डस लिया और उसी से मेरे प्राण छूट गये। मृत्यु के पीछे एक ओर से यमदूत और दूसरी ओर से शिवदूत

मुझे लेने आये । यमदूत कहने लगे " यह बड़ा पापी है, हम इसे नरक में लेजायेंगे । " महादेव के दूत इस बात पर राजी न हुए, और बोले, " नहीं, यह मनुष्य काशी यात्रा की इच्छा करके घर से चला था और काशी के पास ही आकर यह मर गया । महा पापी होने से यह काशी तक न पहुंच सका, तब भी काशी के मार्ग में इसका शरीर छूटा है, इस लिए महा तीर्थ की महिमा के प्रताप से तुम लोग इसका शरीर न छूने पाओगे। यह भूत योनि पाकर इसी वृक्ष पर रहेगा । और भूख प्यास और अपने कर्मानुसार फल भोग कर अनेक दुःख पावेगा । तब किसी हरिभक्त ब्राह्मण का जल पीकर मुक्त होगा । इसी लिए, हे ब्राह्मण ! काशी की महिमा से मैं अब तक यहीं रहा हूं । अब आप के जलपान से मैं पिशाच योनि से मुक्ति पाऊंगा ।"

तुलसीदास बोले, " हे प्रेत ! जो वरदान देने का पक्का मनसूवा तुमने कर लिया है, तो मुझे सपरिवार रामचन्द्र के दर्शन करवादो । " प्रेत ने उत्तर दिया, " रामचन्द्र के दर्शन कराना मेरे सामर्थ्य से बाहर है । पर जिस उपाय से आप की मनोकामना पूरी हो सकती है, उसे मैं बता देता हूं । अमुक मन्दिर में नित्य रामायण की कथा हुआ करती है । कथा सुनने के लिए वहां एक महानुरूप मैला कुचैला दीन मनुष्य सब से

पहले आकर बैठ जाता और सब से पीछे चला जाता है। वह हनूमान जी हैं। वह वेश बदल कर अपने इष्ट देव की महिमा सुनने आया करते हैं। कथा होजाने पर जब जाने लगेंगे उस समय आप उनको जिराले में जाकर घेरिये। वह चाहेंगे तो आपको रामचन्द्र का दर्शन करवा देंगे। यह कह वह प्रेतरूपी ब्राह्मण काशीक्षेत्र में घुसा और भगवान् विश्वेश्वर की कृपा से मुक्ति पाकर चरितार्थ हो गया। तुलसिदास भी घर आकर स्नान, पूजा, और भोजनादि से छुट्टी या उचित समय पर कथा के स्थान को चले गये।

तुलसिदास ने कथा स्थान पर पहुंच कर देखा, सचमुच वहां एक दीन मलीन, दरिद्र मनुष्य बैठा हुआ है। देखते २ कथा मण्डप सुनने वालों से भर गया, और पौराणिक कथा बांचने वाले भी आ पहुंचे। तब कथा होने लगी। थोड़ी देर में जब कथा हो चुकी, सब लोग चले गये अकेला वह दीन मनुष्य ठहरा रहा। सब से पीछे वह भी सभा से बाहर हो गया तुलसिदास ने उसका संग न छोड़ा। थोड़ी दूर जाकर जब देखा कोई कहीं नहीं है, तब तुलसिदास ने दौड़ कर उसके चरण पकड़ लिये और गिड़गिड़ा कर बोले "मैंने आप को पहचान लिया है। आप रामचन्द्र जी के भक्त हनुमान हैं।

हनुमान ने पूछा, तुम क्या चाहते हो ? " गोस्वामी ने कहा, " महाराज ! आप समर्थ हैं। अपने गण सहित श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन करवा कर मुझे कृतार्थ कर दीजिए । " हनुमान जी ने बड़े प्रेम से कहा तुलसी ! तुम चित्रकूट जाओ । वहां अखिल ब्रह्माण्ड ने अधीश श्रीरामचन्द्र जी को स्वगण सहित देख सकोगे यह कह कर हनुमान अन्तर्धान हो गए।

हनुमान की आज्ञा पाकर तुलसिदास बहुत ही आनन्दित होकर चित्रकूट चले । वहां तीर्थयात्रा के सब कामों का अनुसंधान करने लगे। एक दिन वह उस गांव की सड़क से जा रहे थे, एक ठौर पर देखा कि रामलीला हो रही है। उस दिन दशमी की लीला हो रही थी। तुलसिदास ने देख, रामचन्द्र, ने रावण को मार लंका का राज विभीषण को दे दिया और लक्ष्मण, जानकी और हनूमान के साथ सेना को संग लेकर अयोध्या की ओर चले गये । इस लीला को देख तुलसी का मन मोहित होगया। वह बहुत प्रसन्न होकर घर लौटने लगे, राह में उनको ब्राह्मण मिला, तुलसी ने ब्राह्मण से कहा "इस गांव में बड़ी अच्छी रामलीला होती है।" ब्राह्मण बोला क्या तुम पागल हो ? आजकल रामलीला कहां? यहां तो आश्विन और कार्तिक ही में रामलीला हुआ करती है, यह रामलीला का समय नहीं

है "गोसाईं जी ने बड़े आग्रह से कहा" अजी ! मैं अभी अपनी आंखों से लीला देख आया हूं, और तुम कहते हो यहां लीला ही नहीं होती, हमारे साथ चलो, तो मैं तुम को लीला के सामान दिखादूंगा।" तब वे दोनों उस जगह गये पर वहां लीला का कोई चिन्ह भी नहीं था। तुलसीदास बहुत अचम्भे में डूब गये और सब लोगों से पूछने लगे "अभी यहां पर राम लीला हो रही थी, वह सब कहां गई" आप लोगों ने भी तो उसे देखा ही होगा, यह बात सुन वहां के लोग हंसने लगे और बोले आज कल लीला कहां ? आप के मन में कुछ भ्रम हो गया होगा।

ऐसी बात सुन तुलसीदास के सिर में चक्कर आने लगा। वह थोडी देर पहले अपनी आखों से जो कुछ देख चुके थे क्या वह सब मिथ्या थी ? क्या यह मायापुरी थी या इन्द्रजाल का खेल था ? वह बड़ी देर तक विस्मित होकर इस तरह चिन्ता करने लगे। अन्त में अकस्मात् काशी में हनुमान जी की कही हुई बात की सुध आगई। तब उनके नेत्रों से टप टप आंसू टपकने लगे और वह कहने लगे "हाय ! भक्त वत्सल भगवान ने मुझको दर्शन तो दिया, परन्तु मेरी बुद्धि मलीन होने से मैंने उनको पहिचाना नहीं। प्रभुको सामने पाकर मैंने उनका यथोचित्

सत्कार भी न कर पाया" इसी चिन्ता में व्याकुल होकर तुलसी ने उस दिन कुछ न खाया न पीया। रात्रि समय जब नींद आगई, स्वप्न में देखा कि हनुमान जी सामने खड़े होकर कह रहे हैं "तुलसी! तुम सब चिन्ता छोड़ अब रामरूपी श्री हरि के चरणों में आत्म समर्पण कर दो और उनका भजन करो।" इस प्रकार रामचन्द्र के दर्शन कर तुलसीदास काशी लौट आये और वहां प्रेमोन्मत्त चित से राम भजन करने लगे।

एक दिन कोई नरघाती पापी तुलसीदास की कुटी के द्वार पर आकर 'राम राम' कह कर भीख मांगने लगा। तुलसी ने पूछा तुम कौन हो? भिखारी बोला मैं महापातकी हूं। मैंने ब्रह्महत्या कर डाली है। मैं बहुत भूखा हूं। कुछ अन्न देकर मेरे प्राण बचाइए, गोस्वामी ने कहा "तुम गंगा स्नान कर प्रेम से तीनवार जोर जोर से चिल्लाकर राम राम कहो, तब हम तुम दोनों एक साथ बैठकर भोजन करेंगे। हत्यारे ने तुलसीदास के उपदेश अनुसार रामनाम पर विश्वास कर वैसा ही किया। तुलसीदास ने उसको अपने संग बैठाकर एक ही थाली में भोजन किया।

निदान वैष्णव चूड़ामणि तुलसीदास ने नरघातक पापात्मा के साथ संग भोजन कर लिया है, ऐसा सुन आसपासके मनुष्यों

को बहुत आश्चर्य हुआ और वे उनके पास आकर उनका तिरस्कार कहने लगे आपने महात्मा होकर ऐसा काम कर डाला? तुलसीदासने उत्तर दिया, आप लोग सब बड़े विद्वान और बुद्धिमान हैं, परन्तु राम नाम का माहात्म्य आप में से किसी को भी नहीं मालूम है। यह मनुष्य राम नाम की महिमा से सब पापों से मुक्त होकर पवित्र होगया, मेरी बात विश्वास न हो तो विश्वनाथजीके मन्दिरमें जाकर इस विषयकी परीक्षा ले लीजिए।

सब लोगों ने इस बात को मानली और बोले, अच्छा इस मनुष्य की दी हुई घास मन्दिरकी गौएं खालें और इसका छुआ अन्न नन्दी वृष ले ले तो हम इसे निष्पाप समझेंगे। सब लोग मिलकर विश्वेश्वर के मंदिर को गये और उसके हाथ में तृण देकर गौओं के सामने रखवाया, गौएं उसे खाने लगीं। तब तुलसीदास ने परीक्षार्थी के हाथ में अन्न की थाली देकर उसे नन्दी के सामने रखवाया और जोर से चिल्लाकर कहने लगे। भगवन् देव देव! रामनाम की माहात्म्य आपके सिवा और कौन समझेगा। इन सब अविश्वासियों के मन की शंका आप हटा दीजिये, यदि यह मनुष्य निष्पाप होगया है, तो नन्दी वृष इस का दिया हुआ अन्न पा लें। कहा जाता है कि इस बात के कहते ही नन्दी की पत्थर की मूर्त्ति ने एक जीविक वृष का

स्वरूप धर कर थाली का सारा अन्न खा लिया। इस अचरज की घटना देख सब लोग चकित से होगये और रामनाम का माहात्म्य सबके हृदयों पर जम गया। सब लोग तुलसीदास को धन्य धन्य कहते हुये अपने अपने घरों को लौट गये। वह पाप मुक्त मनुष्य भी गृहस्थी छोड़ वैष्णव होगया।

एक दिन एक चोर तुलसीदास के घर चोरी करने आया चोर कोठरी में घुसा तो उसने एक अनुपम, श्यामवर्ण, मन लुभाने वाले पुरुष को धनुर्बाण दाम्य में लिये वहां पहरा देते देखा। ऐसा देख उस रात्रि को वह भाग गया। इसके पीछे वह तीन चार रात को फिर भी चोरी करने की नियत से वहां गया, परन्तु बराबर उस सांवले रखवाले को वहां खड़ा देखा उसको भाग जाना पड़ा। निदान एक दिन निर्भय होकर वह तुलसीदास के सामने आकर बोला, महाराज! मैं पापी चोर हूं। कई बार मैं आपके यहां चोरी करने आया। पर यहां कोई सांवले रंग का बड़ा सुन्दर पुरुष रहता है, वह रात को जगकर इस घर की रखवाली करता है उस के डर से मुझ को प्रतिवार भाग जाना पड़ा है। आज मैं उस से मिलने आया हूं। आप उस मनुष्य को मेरे पास बुलवा दीजिये।" चोर की बात सुन तुलसीदास जान गये, यह श्यामवर्ण पुरुष दूसरा कोई नहीं,

स्वयं प्रभु रामचन्द्र जी हैं। इस पर अपने पास कुछ धन जमा हो गया है, उस के लिये इष्टदेव को रात में जम कर उस की रखवाली करनी पड़ती है, इस से उन को न जाने कितना कष्ट होता होगा, ऐसा विचार तुलसीदास ने अपनी सारी सामग्री दीन दुखियों को बांट दी। चोर को भी कुछ धन ले जाने कहा पर उस ने कुछ न लिया। वरन् उस ने भी अपना सब माल मता दान कर, वैष्णव धर्म की दीक्षा लेली।

एक दिन एक ब्राह्मण मर गया। उस का मृतक शरीर जलाने के लिये लोग गंगा तट पर ले गये। पीछे से उस की विधवा भी जाने लगी। राह में तुलसीदास को देख उसने धरती पर माथा टेक उन को प्रणाम किया। तुलसीदास के मुख से आशीष निकला "तुम्हारा शोभाग्य सदा बना रहे।" इस बात के सुनते ही विधवा के साथियों ने कहा, "गोसाईं जी! यह आप ने कैसी असीस दी? इस का पति तो आज ही मर गया है और उस का शरीर गंगा तट पर क्रिया कर्म के लिये अभी पहुंचाया गया है। आप का वचन मिथ्या हो गया!" ऐसी बात सुन तुलसी थोड़ी देर तक आंख मूंद चुप चाप खड़े रहे। फिर बोले, "अच्छा, जब तक मैं श्मशान पर न पहुंचू इस स्त्री के पति का शरीर आग में मत फूंकना।"

निदान, तुलसीदास श्मशान पर गये, और ब्राह्मण का मृत शरीर गंगाजल से धो, उसे उत्तम वस्त्र पहिरा, उस के पास बैठ नेत्र मूंदकर ब्रह्मरूपी राम नाम जपने लगे । इस प्रकार एक पहर तक भगवान् की स्तुति करने पर वह मनुष्य सोते से जगने की भांति जी कर उठ बैठा और पूछने लगा "मैं यहा कैसे आया ?" जब सब लोगों ने कहा "तुम मर गये थे, गोसाईं जी ने तुम को प्राणदान दिया है, तब वह तुलसीदास के चरणों पर गिर रोने लगा । सब लोग राम नाम की महिमा कीर्तन करते हुए अपने २ घर लौट गये ।

महात्मा तुलसीदास के सम्बन्ध में अनेक अलौकिक कथायें कही जाती हैं । एक समय उन के तपोबल की बात सुन दिल्ली के बादशाह ने उन को बुलवा कर कुछ करामात दिखाने कहा, तुलसीदास ने कहा, 'महाराज । मैं साधारण मनुष्य हूं । करामात दिखाने की शक्ति मुझ में नहीं है ।" इस बात से बादशाह ने अपना अपमान समझ तुलसीदास को बन्दीगृह में बन्द कर दिया । परन्तु उसी दिन बादशाह के महल में लाखों बन्दर आकर उत्पात करने लगे । बादशाह ने इसे तुलसीदास की करामात समझा, और उन को फिर उक्त कर दिया ।

दिल्ली से गोसाईं जी बृन्दावन गये और वहां भक्त माल लिखने वाले वैष्णव श्रेष्ठ नाभा जी से उनकी भेंट हुई।

एक दिन तुलसीदास बहुत से वैष्णवों के साथ गोपाल जी के मन्दिर में गये। वहां धर्माभिमानी किसी दुष्ट ने व्यंग से कहा जो मनुष्य अपने इष्टदेव को छोड़ किसी दूसरे देवता की मूर्ति का दर्शन करता है वह महानीच और कपटी है। यह सुन तुलसी दास ठाकुरजी की ओर देखकर बोले:—

का बरनौं छबि आज की भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवे, धनुषबाण लो हाथ॥

सुना जाता हे कि तुलसीदास की इस बिनती को सुनतेही गोपाल जी के हाथ की बांसुरी धनुर्वाण हो गई। सब लोग विस्मित हो गये और जिस पाखण्डी ने छेड़छाड़ की थी उस का भी सिर लाज से नीचा हो गया।

इस प्रकार चमत्कारिक भगवल्लीला प्रचार और देव देवी दर्शन करते हुए गोसाईं जी फिर काशी लौट आये और वहां हरिभजन, धर्मालोचना और ग्रन्थ रचना करते हुए अपने अन्त काल तक बिता दिया। अन्त समय उन के वचन ये थे—

राम नाम गुण गाय के, भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिये, अबहीं तुलसी सौन॥

गो स्वामी जी के अन्तकाल का समय इस दोहे से प्रकट होता है—

संवत् सोरह सो असी, असी गंग के तीर ।
सावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर ॥

तुकाराम

पूना नगर से ७ । ८ कोस पश्चिम देहू नामका एक गांव है । वहां बल्होजी नाम के एक मनुष्य रहते थे । बल्होजी के दो पुत्र थे । बड़े सावाजी, और छोटे तुकाराम । तुकाराम ने १६०८ ई० में जन्म लिया था । यह जाति के शूद्र थे परन्तु इन के पुरखा लोग बड़े साधे और धर्मात्मां थे ।

बल्होजी अनाज बेचने का धंधा करते थे । बूढे हो जाने पर अपना सारा काम धंधा बड़े बेटे को सौंप कर वह निश्चिन्त हो जाना चाहते थे । परन्तु सावाजी को पारमार्थिक विषय में बहुत आग्रह था, गृहस्थी या सांसारिक झगड़ों में उन का मन नहीं लगता था इस लिये बल्होजा के धंधे की देख भाल १३ वर्ष के बालक तुकाराम ही पर लाददी गई ।

कई वर्ष तक तुकाराम ने पिता का व्यापार संभाल रखा, परन्तु बहुत दिन वह भी सांसारिक झगडों में फंसे न रह सके। २० वर्ष की उम्र में तुकाराम बहुत कष्ट में फंस गये। उन के दो स्त्रियां थीं। इस समय एक स्त्री और पिता का देहान्त हो गया और एक पुत्र भी इस लोक से चल दिया। उधर व्यापार की भी अवनति होने लगी और घाटा सहते सहते उन के पास कुछ भी धन न बचा। सोने में सुगन्ध यह हुई कि दूसरी जीवित स्त्री जीजा बाइ उनको बहुत ही दुःख देने लगी। जीजा का स्वभाव बड़ा क्रोधी और नीच भी था। दुःख के समय पति को ढाढस दिलाने के बदले वह उन्हें भांति भांति के दुख दिया करती। इसी समय बड़ा भाई गृहस्थी छोड़ तीर्थ यात्रा को चल दिया और देश में बड़ा भारी अकाल भी छागया।

ऐसी शोचनीय दुर्दशा में फंस, तुकाराम बिट्ठोवा देवता की पूजा और उनके नाम संकीर्तन ही में समय विताने लगे। इस काम में उन के कुछ पड़ोसी भी उनका साथ देने लगे। तुकाराम बहुत ही सज्जन थे। अपनी दीनता पर तनिक भी ध्यान न दे वह जी खोल कर अन्न दान करते। उनकी स्त्री इससे बहुत चिड़ा करती। यहां तक कि तुकाराम जब भूखों

को भिक्षा देने लगते तो वह निठुर स्त्री उन के हाथ से अन्न का पात्र छीन लेती और बहुत गाली गलोज देकर उन का तिरस्कार करती। पति मित्र मंडली में मिल कर भजन गाया करते, इससे भी जीजा बहुत नाराज होती और बहुधा उन के धर्म भाइयों का भी अपमान करने से न हिचकती। यह दुष्टा उन सब को पति के काम धन्धे के मार्ग में कांटा समझती और सदा कहा करती कि इन्हीं निकम्ममे लोगों ने तुकाराम को खोटी राह बतलायी है। ऐसे दुःख के समय में तुकाराम अपनी स्त्री से ज्ञान्त्वना पाने के बदले मित्रों सहित अपमानित हुआ करते थे।

अन्त में जीजा बाई के अत्याचार जब असह्य होगये तो तुकाराम ने घर छोड़ दिया और अपने गांव के विट्ठोवा देव के मन्दिर में जाकर रहने लगे। परन्तु उन्हों ने बिलकुल गृहस्थी न छोड़ी। कभी कभी घर भी लौट आते थे। विट्ठोवा देव के मन्दिर से दो कोस पर एक पर्वत है। तुकाराम वहां जाकर भजन-साधन और ध्यान-धारण में दिन दिन भर बिता देते और सन्ध्या समय फिर मन्दिर को लौट आते। इसी समय बाबा चैतन्य से उनका परिचय हुआ। यह चैतन्य नदिया वाले बंगाली धर्मात्मा नहीं थे। उसी नाम से उन्हीं के एक

शिष्य थे। तुकाराम का धर्मानुराग और संकीर्त्तन आदि कार्यों में उनका अटूट उत्साह देख बाबा उन से बहुत प्रसन्न होगये और अनेक प्रकार के धर्मोपदेश और सदय वचनों से उन को शान्त्वता देने लगे।

बाबा चैतन्य के उपदेशों से तुकाराम के ज्ञान नेत्र विशेष रूप से खुल गये और उनको मानों नया जीवन मिल गया। भगवान पर दृढ़ विश्वास रखने और उनका नाम कीर्त्तन करने से भी मुक्ति मिल सकती है। अब तुकाराम ने इसे भली प्रकार समझ लिया। अब तक वह अपने आप ही धर्मानुष्ठान करते थे अब साधारण मनुष्यमण्डली के लिये भी उन के कर्त्तव्य ज्ञान का उदय होने लगा। इस समय वह कथा बांचने और भजन गा गा कर रमने लगे।

तुकाराम पहले नाम देव गोस्वामी विरचित अभंग (भजन) गाया करते थे। परन्तु थोड़े ही काल में भगवान की कृपा से उनका भी हृदय कवित्व के अमृत रस से परिपूर्ण हो गया और नित्य की बोल चाल की भांति बहुत ही अनुपम अभंग अपने आप, बिना लिखे ही, मुख से बोल कर बनाने लगे। यह भजन ऐसे गहरे भावों से भरे, मीठे और कवित्वमय हैं कि इन को सुन सुन कर पत्थर का कलेजा भी प्रेम भक्ति से पिघलने

लगता है । दाक्षिणात्य में जहां तहां लोग तुकाराम के अभंग गाया करते हैं।

इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि तुकाराम विद्वान थे। तेरह वर्ष की अवस्था में व्यापार में लगाये गये थे। हो न हो दूसरे व्यापारियों की भांति साधारण हिसाब किताब रख लेने के ऊपर और दूसरी शिक्षा उनको न मिली होगी। परन्तु बहुधा देखा जाता है कि उन के अभंगों में वेद और पुराणों के गूढ़ मतों की बड़े विशदरूप से व्याख्या की गई है। साधु तुकाराम जब भजन गाते, तब ऐसे भाव के उच्छ्वास में मत्त होजाते कि उनके चारों ओर सब जाति के सैकडों नर नारी बटुर कर मन्त्र मुग्ध की भांति खड़े रह जाते थे। धीरे धीरे लोग उनको ईश्वर का भेजा हुआ पवित्र गुरु मानने लगे। शूद्र जाति के होने के कारण कोई उन से घृणा न कर सकता। सब लोग ब्राह्मण और साधु की भांति उन की भी भक्ति करने लगे।

भक्त और कवि होने के कारण तुकाराम का नाम अब दाक्षिणात्य भर में प्रचारित होगया और धर्म के प्यासे लोगों झुंड के झुंड उन से उपदेश लेने की कामना से उन के पास आने लगे। इस बात को देख देश के ब्राह्मणों को बहुत क्रोध

होने लगा। सम्मान आदि उनकी सम्पति एक शूद्र को दी जाने लगी, यह बात उनके लिए असय हो गयी। अतः सब लोगों ने एक मत होकर उन को दुःख देने का मनसूबा कर लिया। इसी सूत्र में तुकाराम की पहली परीक्षा एक ऐसे मनुष्य की ओर से हुई जिससे कभी अत्याचार पा सकने की न थी। देहू गांव में मम्बोजी नाम के एक गोस्वामी रहते थे। वह तुकाराम के भजन संगीतों में नियमित रूप से मिला करते थे और साधु तुकाराम उन को सीधा साधा भक्त और सच्चा मित्र समझा करते थे। बिट्टोवा जी के मन्दिर के पास गोस्वामी की एक वाटिका थी। बगीचे के चारों ओर कांटों का घेरा लगा हुआ था घटनावश इन कांटों की डालियां इतनी बढ़ गई कि मन्दिर में जाने की राह बन्द हो गई थी। मन्दिर में कोई उत्सव का समय पास आ गया था। उस समय लोगों को आने जाने में कुछ कष्ट न हो, इस अभिप्राय से राह पर लटके हुए जंगल को तुकाराम काट २ कर हटाने लगे। इस बात को सुनते ही मम्बोजी बड़े क्रोध से भर कर वहां आये और बड़ी निर्दयता से तुकाराम को कांटों की डालीं से मारने लगे। भगवद् भक्त को जैसा चाहिये उसी धीरज से तुकाराम ने यह अत्याचार सह लिया। वह मम्बोजी से कुछ न बोले।

इस घटना पर उन्होंने कुछ अभंग बनाये। उसमें से एक अभंग में इस परीक्षा में से बचा लेने के लिये बिट्ठोवा जी को उन्होंने विशेषरूप से धन्यवाद दिया है। उन्होंने कहा है, "भीतर क्षमा दान कर बाहर। शरीर से इष्ट देव ने दुःख सह लिया है। इस से बढ़ कर दया का चिन्ह और क्या हो सकता है?" इस परीक्षा के उपरांत पहले की नाईं तुकाराम नित्य नियम से मन्दिर में भजन गाने लगे। ऐसे आचरण के लिये उन्हों ने मम्बोजी से कभी कोई बुरा बर्त्ताव नहीं दिखाया। परन्तु सुना जाता है कि तुकाराम के इस अद्भुत क्षमा गुणसे मुग्ध हो कर मम्बोजी को बहुत पछतावा हुआ और अन्त में साधु के शिष्य और सेवक बन कर उनसे अपने कुकर्म का प्रायश्चित किया था।

निदान भक्त तुकाराम को इससे भी अधिकतर दुखदाई एक परीक्षा में फँसना पड़ा था। भगोली निवासी रामेश्वर भट्ट नाम के एक मनुष्य ने, साधु के बढ़ते हुए यशः—सौरभ से ईर्षान्वित हो कर उनके अनिष्ट करने का संकल्प करलिया। इस अभिप्राय से उस ने एक षटचक्र रचा। उसने उस प्रवेश के न्यायाधीश के पास नालिश की कि तुकाराम निरक्षर शूद्र होने पर भी विधर्म का प्रचार कर रहा है और उसे ऐसे काम

से न रोकने से देश के लिये बहुत बुरा होगा। न्यायाधीश ने समझा कि तुकाराम प्रजा को भड़का कर विद्रोह फैला सकता है। इस लिये उसने देहू के पटेल को आज्ञा दी कि उसे गांव के बाहर निकाल दो। इस घटना से तुकाराम बहुत निराश हो गये और लोग कहते हैं कि ईश्वर की करुणा पर उन का जो अटल विश्वास था वह थोड़ी देर के लिये डगमगाने लगा। वह बड़ी दीनता से रामेश्वर भट्ट के पास जाकर राजाज्ञा को रुकवा देने की प्रार्थना करने लगे। भट्ट बोला, "जो तुम और अभंग न रचो और जिन को बनाया है वह सब नदी में बहा दो तो मैं न्यायाधीश की आज्ञा रोक दूंगा।" कहा जाता है कि तुकाराम ने इस अनुचित प्रस्ताव को मान लिया, और अपने अभंगों को, जल से भिगो कर नष्ट न हो जावें, इस तरह बांध कर नदी में बहा दिया। लोग उनके इस आचरण पर हंसी करने लगे "कि देखो, कैसा मूर्ख है। कुछ दिन पहले इस ने अपने दस्तावेज आदि सांसारिक अधिकार के कागजपत्र जल में बहाकर इस लोक से सुख की आशा नष्ट कर दी थी; और आज अपनी भक्तिपूर्ण कविताओं को भी बहाकर परलोक के सुख की आशा से भी अपने को धोखा दे डाला।"

सब लोगों से ऐसे तिरस्कर बचन सुन कर साधु तुकाराम

को बहुत दुःख हुआ और अपने निंदित कार्य के लिये वह विट्ठोवा के पास रो २ कर क्षमा मांगने लगे । जब तक विट्ठोवा ने उनकी प्रार्थना न सुनी, तब तक अंजल त्याग मंदिर के द्वार पर धरना धर कर पड़े रहे । सुना जाता है कि ऐसी दशा में १३ दिन तक वह विट्ठोवा के द्वार पर पड़े थे । अन्त में इष्ट देव ने प्रसन्न हो कर रात्रि समय बालक के रूप से उन के सामने आकर कहा, "डरो मत; अभंग नष्ट नहीं हुए । अमुक स्थान पर जाकर उनको जल में से निकाल लो ।" इस प्रकार तुकाराम ने अपने अभंगों का पुनरुद्धार कर लिया और इष्ट देव को कृतज्ञता प्रकाश के लिये नये २ भजन बनाने लगे । अंत में रामेश्वर का चित्त भी बदल गया । वह भी शत्रु भाव छोड तुकाराम का विश्वस्त अनुचर बन गया । यह रामेश्वर भट्ट भक्त शिरोमणि तुकाराम चौदह शिष्यों में से एक था ।

भक्त तुकाराम जितेन्द्रिय भी बहुत उच्च कोटि के थे । कोई बहुत ही सुन्दरी स्त्री नित्य उनकी कथा सुनने जाया करती थी । वह तुकाराम के स्वरूप और सद्गुणों पर मुग्ध हो कर उनकी अनुरागिणी हो गयी । एक दिन साधु को अकेला पाकर ज्ञान रहित रमणी ने उन से अपना अभिप्राय प्रकट किया । तुकाराम इस बात से बहुत दुःखी होकर बोले, एक

अपनी भार्या के सिवाय दूसरी सब कामिनियां उन के लिये रुक्मिणी देवी हैं। वह उनकी माता के बराबर है। और कभी वह ऐसी बुरी बात मुख पर न लावे।

लोहा गांव में शिवजी नाम एक कसेरा रहता था। उस के साथ तुकाराम की मैत्री थी। शिवजी सांसारिक कामकाज छोड़ बहुधा तुकाराम के साथ सत्संग करता था। पति का ऐसा वर्ताव देख कसेरे की पत्नी साधु से बहु अप्रसन्न होगई। किसी भांति उन को दुःख दे पति से उनका संग छुड़ाने के की नीयत से एक दिन उसने अपने घर तुकाराम का निमन्त्रण किया। निदान, भोजन के पहले तुकाराम ने गरम जल से स्नान करने की इच्छा प्रकट की तो उस दुष्टा ने तुकाराम के सिर पर खौलता हुआ जल उड़ेल दिया। इस से साधु का सारा शरीर जल गया। कसेरिन के इस दूराचार से तुकाराम को बहुत ही दुःख हुआ, पर वह मुख से कुछ भी न बोले; यन्त्रणा सह लेने की शक्ति देने के लिये वह एकाग्र हो कर बिट्ठोवा से प्रार्थना करने लगे। भक्त शिरोमणि तुका की ऐसी सहन शीलता देख शिवजी की पत्नी का पत्थर का कलेजा भी पिघल गया और वह अपनी निठुराई के लिए बहुत दिनों तक पश्चात्ताप करती रही।

सामान्य शूद्र होकर भी तुकाराम ने धर्मराज्य में इतनी ख्याति और प्रतिष्ठा पाई थी, ऐसा देख दो संन्यासी अपने जीवनों की पवित्रता पर गर्व कर फूल उठे और तुकाराम से विशेष रीति से विद्वेष दिखाने लगे, इन दोनों ने महाराज शिव-जी के प्रधान कर्मचारी दादोजी खंडदेव के पास यह कह कर नालिश की कि तुकाराम शूद्र होकर पवित्र वेदार्थ प्रचार करता फिरता है, यह कार्य सम्पूर्ण शास्त्र विरुद्ध है। इसलिये तुकाराम को दंड देकर अनधिकार चर्चा से रोक देना उचित है। सन्या-सियों की बात सुन बुद्धिमान दादोजी ने उत्तर दिया कि उन दोनों को तुकाराम के साथ धर्म विषय पर शास्त्रार्थ करना होगा। इसके वाद जो पक्ष हारेगा उसी को दंड दिया जावेगा।

ज्ञानाभिमानी संन्यासी इस बात पर राज़ी होगये शास्त्रार्थ सुनने और हारजीत का निर्णय करने के लिए राजाज्ञा से पंडितों की एक बड़ी भारी सभा रची गई। शास्त्रार्थ होने के पहले दादोजी ने तुकाराम को संकीर्त्तन करनेकी आज्ञादी। तुकाराम भी विशेष आग्रह और भक्ति से अपने बनाये हुए अभंगों को गाने लगे। सभा में आये हुए पंडित लोग और दूसरे मनुष्य भी एक दम मोहित होय मिट्टी के पुतलों की भांति निश्चल होगये। दोनों सन्यासियों ने भी अपना विद्वेषभाव भूल गद् गद्

हो बड़ी भक्तिसे तुकारामके चरणों में प्रणाम किया। यह सब देख दादोजी भी मुग्ध हो उए, उन्होंने सन्यासियों का चित्त बहुत धमका कर उनकी पराजय और तुकाराम की जय घोषणा कर दी।

इस परीक्षा के बाद तुकाराम को अधिक दुख न दिये गये उनकी विजय पताका इस समय से अनुकूल बयार पानर बड़ी तेज़ी शे उड़ने लगी, उनके शत्रुओं ने जो उन पर वाण वर्षा की थी, वे सब लौट लौट कर उन्ही लोगों को घायल करने लगे। बादल हट जाने पर सूर्य किरणोंकी भांति तुकाराम की यशोराशि चारों ओर दौड़ कर उज्वलता के साथ फैलने लगी।

तुकाराम के जीवन के शेष भाग का स्पष्ट इतिहास नहीं मिलता। सुना जाताहै कि नदियाके बंगाली वैष्णव श्रेष्ठ चैतन्य महा प्रभु के समान तुकाराम भी सहसा लुप्त हो गए थे। दाक्षिणात्य के साधारण मनुष्यों का विश्वास है कि वह अपने मानवी शरीर में अमरधाम को चले गए। परन्तु हो सकता है कि किसी से बिना कहे सुने कुछ वह तीर्थ यात्रा को चले गए होंगे और यात्रा ही में कहीं उनका शरीर छूट गया होगा। कहा जाता है कि जाने के पूर्व उन्हों ने अपनी पत्नी से पूछा था कि "तुम भी मेरे साथ स्वर्ग चलोगी?" परन्तु स्वर्ग ईश्वर के समीप रहने के सुख से अधिक और क्या हो सकताहै

तुकाराम यदि संसार से अलग होकर एकान्तमें एक मात्र ईश्वर ध्यान और योगानन्द ही में रहने के लिये कहीं चले गये हों तो वह भी स्वर्ग ही जाना हुआ, इसके कहने में क्या हानि है।

तुकाराम की संक्षिप्त जीवनी समाप्त करने के पहिले देखना चाहिये, वह किस स्वभाव के मनुष्य थे और उनका महत्व कहां से आया। वह जाति के शूद्र थे। बहुत थोड़े व्यापार से उनकी आजिविका थी, गांव के रहने वाले और निरक्षर थे। धन संपत्ति उन के पास कुछ भी न थी। परन्तु उन के पास ऐसी कोई वस्तु थी जिस के प्रभाव से धनी, धार्मिक, विद्वान सभी उन के पास आते और उन के चरणों पर लौट जाते थे। असल बात यह है कि तुकाराम ने अपनी आत्मा पर विजय पा लिवा था। उन का चित्त प्रशान्त और वश में था, सो वह सांसारिक कष्टों को तुच्छ समझ सकते थे। जिस समय मम्बोजी ने उन को कांटों से मारा और कसेरे की पत्नी ने उन के सिर पर गरम पानी उड़ेल दिया, जब व्यवसाय में वह सारी सम्पत्ति गंवा बैठे, और उन के पिता, पुत्र, और पत्नी की मृत्यु हो गई, तुकाराम के उन समयों की दशा सोच कर किस के नेत्रों में आंसू नहीं भर आते ? पर तुकाराम ने इन सब की कुछ भी परवाह न की। वीरों की भांति अनायास सभी को ईश्वरेच्छा जान सह लिया।

यह सहन शीलता और चित्त का प्रशान्तभाव साम्य और संयतावस्था ही तुकाराम के चरित्र के विशेष लक्षण और उनकी महत्व प्राप्ति के प्रधान मसाले थे। खोटे दिन आये तो वह बिट्ठोवा जी का नाम जप करके दिन बिताते रहे। ईश्वर ने उन को जैसी दशा में रखा, उसी में वह प्रसन्न रहे। जब व्यापार में टोटा आ गया वह बहुत दरिद्र होकर रहने लगे, उस समय चाहे जितना नीच कर्म क्यों न हो उसी के सहारे विधि से धन कमाकर गृहस्थी का खर्च चलाते रहे। एक समय खेतों में चौकीदारी करके भी अपने परिवार के लिये भोजन का उपाय करते रहे। परन्तु इतनी दुर्दशा में पड़कर भी वह दूसरे मनुष्यों के साथ अपना कर्तव्य नहीं भूले थे। वह बड़े दानशील थे। किसी का दुःख देख उन का कलेजा फटने लगता था। स्वयं उपासे रहकर भी दूसरों की भूख प्यास मिटाने का भरसक यत्न करते थे। ऐसी ही प्रकृति के लिए अपनी पत्नी जीजा के कारण उनको दण्ड भोगना पड़ता था। किसी समय कई ऊख लेकर वह घर आ रहे थे। राह में कोई प्यासा दुखिया मिल गया, उसको एक ऊख दे दिया। आगे चल कर किसी दूसरे भिक्षुक ने एक ऊखमांगा तो उस को भी दे डाला। इसी प्रकार घर पहुंचते पहुंचते उनके पास एकही ऊख बचगया। स्त्री सब बातें सुन आग बबूला होगई और खूब गालियां सुनाने लगी।

इतने पर भी जब उस का क्रोध शान्त न हुआ तो तुकाराम के हाथ से बचे हुए इकलौते ऊख को छीन कर उन की पीठ पर पट पट पीटने लगीं। ऊख के दो टुकड़े होगए। पर तुकाराम जीजा के इस बर्ताव से नाराज़ होने के बदले तनिक हंस कर बोले, "वाह! तुम मेरी सच्ची घर वाली हो। तुम सच मुच मेरी अर्द्धांगिनी हो। ऊख के तुमने दो टुकड़े कर डाले। अब आओ, हम दोनों एक एक टुकड़ा लेकर खालें।"

धर्म जीवन में पगे हुए महात्मा लोग कभी सांसारिक दुःख से नहीं घबराते। वरन् दुःख, दरिद्रता, रोग, शोक और विपत्तियां मनुष्य को ईश्वर के पास खींच लाती हैं। ऐसा विश्वास कर वे इन सब को सब सुखों की जड़ समझने लगते हैं। तुकाराम ने दुःख के समय विट्ठोवा के मन्दिर में सान्त्वना पाकर एक अभंग में अपने मनका भाव इस प्रकार प्रकट किया है:—
"हे प्रभु जी! समय समय पर सांसारिक कष्टों में फंस जाता हूं। यह मेरे लिए हितकारी हैं; मेरा सत्यानाश होकर अच्छा ही हुआ है, शोकमें मेरा उपकार हुआ है; मेरी स्त्री की तीखी पैनी धमकी भी मेरे हित के लिए है; क्योंकि ये सब मुझको आपके पास ले आते हैं और मुझको सच्ची सान्त्वना मिल जाती है।"

धर्म वीर महा पुरुष लोग पृथ्वी के धन को तुच्छ समझकर उससे घृणा करते हैं। एकबार महाराज शिवाजी ने तुकाराम को अपने राजभवन में जाने के लिए निमन्त्रण दिया। परन्तु कहीं सांसारिक विभव देख चित्त चंचल न हो, इस डर से उन्होंने वहां जाना पसन्द न किया। एक अभंग में वह शिवाजी को लक्ष्य करके कह रहे हैं—"हम दुखी नहीं हैं, हमको किसी तरह दान योग्य या कृपा पात्र मत समझिये। महाराजाधिराज पाण्डुरंग (श्रीकृष्ण हमारे रक्षक हैं। हम क्यों किसी का मुख ताक कर रहें? हमारी पार्थिव आकांक्षाएं बहुत तुच्छ हैं—आप से हमारा क्या प्रयोजन?"

एक दूसरी जगह कहा है—"जिसको अज्ञान धन और सांसारिक प्रतिष्ठा से प्रयोजन रहता है, वही राजभवन को जाता है। मेरी अपनी बात कहनी हो तो कहना पड़ता है, कि बहु मूल्य वस्तु और आभूषण मुझको प्राणरहित कर देते हैं। मुझे किस वस्तु का अभाव है? सुविस्तृत पृथ्वी मेरी शय्या है, अनंत आकाश मेरा आच्छादन है।"

तुकाराम का जीवन अत्यन्त पवित्र था। बहुत थोड़े ही मनुष्य मनोमोहिनी सुन्दरी कामिनी के रूप भोगने की लालच को जीत सकते हैं। पुराण आदि पढ़ने से जान पड़ता है कि

बहुत पवित्र मन के ऋषी तपस्वी लोग भी समय समय पर रूपवती रमणी के कटाक्षों से आहत होकर गिर गए हैं। ऐसी परीक्षा में भी तुकाराम ने विजयी वीर की नाँई पार उतर कर सारे जगत् को सच्चे साधुजीवन का दृष्टान्त दिखा दिया है।

निष्कलंक जीवन के आदर्शरूप तुकाराम ने अभंग बनाकर पृथ्वी पर अपना नाम अमर बना रखा है। ये अभंग अब तक दाक्षिणात्य के राजमहल से दीन की पर्ण कुटी तक में समान आग्रह और भक्ति से गाये जाते हैं। ब्राह्मण शूद्र सभी श्रेणी के लोग इनसे निर्मल आनन्द लूटा करते हैं। २५० वर्ष पहिले रचे हुये अभंग आज दक्षिण देश के पार्थना समाजों तक में गाये जाते हैं।

॥ सम्पूर्ण ॥